13

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज़

वी० के० कृष्ण मेनन

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1991

सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज

वी० के० कृष्ण मेनन

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1991

908 LS—2

लो०स०स० (स०शो०सू०से०-ई०एस०एस०) सु०सां०मो० / 13

© लोक सभा सचिवालय, 1991

जुलाई, 1991

मूल्य: 30 रुपए

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन प्रकाशित तथा प्रबन्धक, फोटो लिथो यूनिट, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

भारतीय संसदीय ग्रुप ने गत वर्ष के आरंभ में कुछ सुविख्यात सांसदों की वर्षगांठ मनाने का निर्णय लिया, ताकि हमारे राष्ट्रीय और संसदीय जीवन क्षेत्र में उनके बहुमूल्य योगदान को स्मरण किया जा सके और उसे लेखनीबद्ध किया जा सके। इस प्रयास के अनुसरण में मार्च, 1990 से "सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज" के नाम से एक नई श्रृंखला प्रारम्भ की गई और अब तक डा० राम मनोहर लोहिया, डा० लंका सुन्दरम, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, पंडित नीलकंठ दास, श्री पी० गोविन्द मेनन, श्री भूपेश गुप्त, डा० राजेन्द्र प्रसाद, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, श्री सी०डी० देशमुख, श्री जयसुख लाल हाथी, श्री एम० अनन्तशयनम अय्यंगर और डा० बी०आर० अम्बेडकर पर बारह मोनोग्राफ प्रकाशित किए जा चुके हैं।

वर्तमान मोनोग्राफ इस श्रृंखला का तेरहवां मोनोग्राफ है, जो दृढ़ आस्थावान व्यक्ति, कर्मठ देशभक्त, सुविख्यात सांसद और उच्च कोटि के राजनेता श्री वी० के० कृष्ण मेनन के जीवन और उनके संसदीय कार्यकलापों की कुछ झलकियां प्रस्तुत करता है। हमारे स्वतंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता सेनानी के रूप में उनकी भूमिका और यूरोप तथा ब्रिटेन में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उनका अनवरत संघर्ष निस्संदेह असाधारण था। यह मोनोग्राफ अंग्रेजी, हिन्दी और मलयालम में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस मोनोग्राफ के दो भाग हैं। भाग एक में श्री वी०के० कृष्ण मेनन की जीवन झांकी है, जिसमें उनके प्रारंभिक जीवन, उनकी शिक्षा उनकी विचारधारा, स्वतंत्रता सेनानी और यूरोप में हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रवक्ता के रूप में उनकी भूमिका, पंडित नेहरू के साथ उनकी सहबद्धता, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में उनका स्मरणीय योगदान तथा एक सुविख्यात सांसद, विशेषरूप से रक्षा मंत्री, के रूप में उनकी भूमिका को सम्मिलित किया गया है। भाग दो में उनके द्वारा लोक सभा तथा राज्य सभा में विभिन्न विषयों पर दिए गए कुछ चुनिंदा भाषणों के उद्धरण सम्मिलित किए गए हैं।

हम श्री वी० के० कृष्ण मेनन की वर्षगांठ के अवसर पर उनकी स्मृति में अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि इस मोनोग्राफ को रुचिकर और उपयोगी पाया जाएगा।

नई दिल्ली;
जुलाई, 1991

शिवराज वी० पाटिल
अध्यक्ष, लोक सभा
और
प्रेसीडेंट, भारतीय संसदीय ग्रुप।

विषय सूची

आमुख

भाग एक

1

उनका जीवन

वी० के० कृष्ण मेनन

(1)

भाग दो

उनके विचार

श्री वी० के० कृष्ण मेनन द्वारा लोक सभा और
राज्य सभा में दिए गए कुछ चुनिन्दा भाषणों के उद्धरण

2

जेनेवा कन्वेन्शन्स बिल

(19)

3

भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध

(29)

4

भारत-रूस संधि

(38)

5

आणविक निरस्त्रीकरण

(46)

6

संयुक्त राष्ट्र संघ से कश्मीर मामले का वापस लिया जाना

(63)

7

न्युक्लियर परीक्षण विस्फोट के संबंध में विश्व शक्तियों का सम्मेलन

(72)

8

शिक्षा संस्थाओं में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण

(80)

9

बेरोजगारी की समस्या

(87)

10

संविधान (पच्चीसवां संशोधन) विधेयक

(90)

11

न्यायालय अवमानना विधेयक

(97)

12

आपातकाल की घोषणा

(104)

13

आंतरिक सुरक्षा विधेयक

(108)

भाग — एक

उनका जीवन

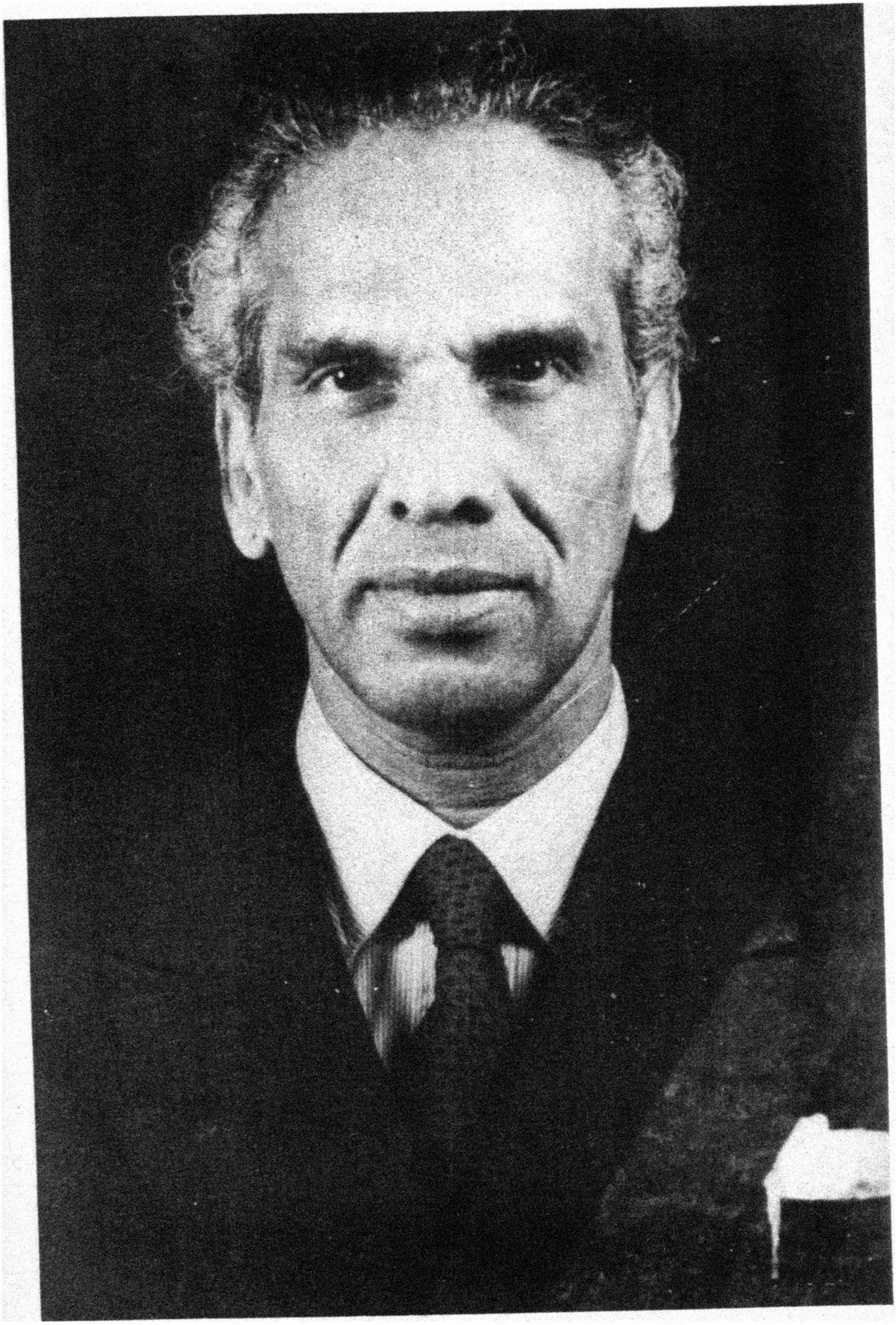

1

वी० के० कृष्ण मेनन—जीवन झांकी

कृष्ण मेनन निस्सन्देह इस युग के ऐसे व्यक्तियों में से एक थे जिनका व्यक्तित्व तो अत्यंत आकर्षक था परन्तु उन्हें लोग ठीक से समझ नहीं पाए। उनमें बुद्धि और भावना, तर्क और मनोवेग, व्यंग्य और स्नेह जैसे विरोधाभासी गुण समाहित थे।

उनका जन्म 3 मई, 1896 को उपनगर मालाबार में मातृ सत्तात्मक कुल थारवाड़ में हुआ। उनके पिता, श्री कृष्ण कुरूप और माता श्रीमती लक्ष्मी कुट्टी सरल आत्मा और परम्परा की गरिमा के पुजारी थे। उनके पिता एक समृद्ध वकील और जमींदार थे तथा स्पष्टवादिता और अधिकार भावना के लिये प्रसिद्ध थे। उनकी माता जी एक निष्णात विदुषी और संगीतज्ञ महिला थीं और जो कुछ वह सही समझती थीं उस पर अटल रहती थीं। उनके पति जितने गतिशील थे वह उतनी ही स्वतंत्र विचारों वाली महिला थी। मेनन के माता-पिता को निकट से जानने वाले व्यक्तियों को उनके तथा कथित अक्खड़, दुराग्रही और हठधर्मी स्वभाव के प्रति कोई आश्चर्य नहीं होता।

कृष्ण मेनन हमारे देश में ऐसे बहुत कम राजनीतिज्ञों में से हैं जो देश-विदेश में आलोचना के शिकार हुए। जिन्होंने भारत को बदनाम करने का प्रयास किया, उन्हें उनके तथाकथित अक्खड़पन का कोपभाजन बनना पड़ा। ढोंगी व्यक्तियों को उनकी बातें बड़ी तिक्त और कटु लगती थीं। उन्हें यह उपदेश स्वीकार्य नहीं था कि एक औसत दर्जे के आदमी को अपने ऊपर आए कष्ट बिना प्रतिकार किए सहर्ष झेल लेने चाहिए।

एक औसत राजनीतिज्ञ के विपरीत उन्होंने ऐसे कई कार्य किये जो उनके राजनैतिक जीवन के लिये शुभ नहीं थे। उन्होंने अपनी भावनाओं को नहीं छिपाया। उनकी आदत समझौता करने की नहीं थी। संसद की उपन्तिकाओं (लाबियों) में वे अपने महत्वपूर्ण मंत्रिमण्डलीय सहयोगियों के सामने से औपचारिक अभिवादन किये बिना केवल इसलिये आगे निकल जाते थे कि वे उनके दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे।

जिस प्रकार वह बाहर से रूखे थे ठीक उसी प्रकार वह मूलतः स्पष्टवादी थे। इस रूखेपन की उनके निकट सहयोगियों को ऐसी आदत पड़ गई थी कि जब वह नम्रता से बात करते थे तो उन्हें बड़ा अटपटा सा लगता था। उनके सचिव के रूप में कई वर्षों

तक कार्य करने वाली सुश्री बिजेट टनर्ड कई बार यह कह कर विरोध व्यक्त करती थी कि "कमाल है श्रीमान, आज आप नरमी से पेश आ रहे हैं। मैंने क्या कसूर किया है?"

वह अपने साथ काम करने वाले लोगों से रूखाई के साथ-साथ स्नेह का बर्ताव भी करते थे। नई दिल्ली में रक्षा मंत्रालय के कार्यालय के गेट पर तैनात चौकीदार, जो अंग्रेजी नहीं जानता था, हिन्दी न जानने वाले मंत्रियों को चिढ़ाया करता था। एक बार मेनन उस पर आग बबूला हो गये और अपने कार्यालय पहुंचे। तभी मंत्री के कार्यालय से इस चौकीदार के लिए बुलावा आ गया। जब वह उनके कार्यालय पहुंचा तो मेनन ने अपने सचिव से कहा "मैं अन्दर आते समय इस व्यक्ति पर चिल्लाया था"। इससे कहिये कि "मुझे इसका खेद है।" इस तरह चौकीदार, जो कि भयभीत होकर अन्दर गया था बाहर आते समय उसकी आंखों में आंसू थे।

उनका अपना एक अलग ही तरह का विनोदी स्वभाव था। एक बार वे बीमार पड़ गये। उनसे भेंट करने गये भारतीय पत्रकारों के एक दल ने जब उन्हें एक सप्ताह के बाद दाढ़ी बनाते हुए देखा तो कहा "आप दाढ़ी बनाकर कुछ बेहतर महसूस करेंगे", मेनन ने चुटकी लेते हुए कहा "मैं तो वैसा ही महसूस करूंगा पर जो लोग मुझे देखने आयेंगे वे ही बेहतर महसूस करेंगे।"

जीवनियों और जीवनी लेखकों के प्रति उनकी कोई रुचि नहीं थी। वे कहा करते थे कि "मैं कहां पैदा हुआ और मैंने किस प्रकार का भोजन खाया, इन सब बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता है। उल्लेखनीय बात तो यह होगी कि मैंने क्या काम किये। आप इस काम का निरपेक्ष रूप से विश्लेषण करें और यही जरूरी चीज है।"

अपने पिता के घर में मेनन ने सुख-सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत किया। परन्तु इससे वह संकोची प्रवृत्ति के व्यक्ति बन गये। मित्रों के बीच वे दबंग और उग्र स्वभाव के व्यक्ति माने जाते थे।

शिक्षा

सर्वप्रथम वे तेल्लीचेरी में स्कूल गये। वहां उन्होंने नगरपालिका के स्कूल में पढ़ाई की और एक वर्ष तक ईसाई मिशनरी संस्था हाई स्कूल ऑफ ब्रेनन कालेज में भी पढ़ाई की। अपने माता-पिता से प्राप्त दृढ़ संकल्प और हठधर्मिता जैसे गुणों की झलक उनमें स्कूली जीवन से ही बखूबी दिखायी देने लगी थी।

स्कूल से उन्होंने अपने पिता के पुराने कालेज जमोरियन्स कालेज में दाखिला लिया और दो वर्ष तक प्राचीन इतिहास, आधुनिक इतिहास, तर्कशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने 1915 में इन्टर परीक्षा उत्तीर्ण की तथा इसके बाद मद्रास स्थित प्रतिष्ठित प्रेसीडेंसी

कालेज में दाखिला लिया। जैसा कि उन दिनों चलन था उन्होंने कक्षा-अध्ययन की बजाय पाठ्येतर-कार्यकलापों में अधिक रुचि दर्शायी। उनके मित्र जहां उन्हें उत्साही वक्ता मानते थे, अध्यापकों के लिये वह एक बाधास्वरूप थे क्योंकि वह स्वतंत्रता संग्राम के औचित्य और अंग्रेजों द्वारा हमारे लोगों की आकांक्षाओं की उपेक्षा किये जाने की बात किया करते थे।

स्वतंत्रता सेनानी और यूरोप में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रवक्ता के रूप में उनकी भूमिका

युवा कृष्ण मेनन आरम्भ से ही श्रीमती एनी बेसेंट से प्रभावित थे। और इसी कारण मद्रास लॉ कालेज में प्रवेश लेने के कुछ महीनों बाद ही उन्होंने कालेज छोड़ दिया। वह श्रीमती एनी बेसेंट के होम रूल आन्दोलन में शामिल हो गये और उन्होंने श्रीमती एनी बेसेंट को वास्तविक नेता के रूप में स्वीकार किया क्योंकि उनमें नेतृत्व के वे सभी गुण विद्यमान थे जिनकी मेनन को अपेक्षा थी। उन्होंने अपने निर्भीकता, सामाजिक कार्य के प्रति गहन रुचि, अनुशासन प्रियता जैसे गुणों की जो मेनन को अत्यधिक प्रिय थे, आत्मसात करने की प्रेरणा उन्हें दी।

आयरलैंड का खून और भारतीय प्रेरणा, श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा मद्रास से "होम रूल लीग" शुरू करने के लिए उत्तरदायी थीं और देखते ही देखते इस लीग का लाल-हरा झंडा मद्रास स्थित प्रेसीडेंसी कालेज के भवन के ऊपर लहराने लगा। कृष्ण मेनन के राजनैतिक जीवन का शुभारंभ वहीं छात्र-जीवन के दौरान हुआ। उन्होंने व्यवस्था को जिस ढंग से चुनौती दी, इससे पहले उस ढंग से कोई भी नहीं दे पाया था और झण्डा फहरा दिया। इस प्रकार इस काम से कृष्ण मेनन भारत की स्वतंत्रता के निमित्त एक अग्रणी नेता तथा प्रवक्ता बन गए थे।

मद्रास में कृष्ण मेनन का जीवन पूर्णतः आडम्बरहीन था। वे अपने कपड़ों के प्रति लापरवाह थे, मोटा-खुरदरा कपड़ा पहनते और वे अक्सर नंगे पांव दिखाई देते थे तथा लकड़ी की चारपाई पर सोते थे। उनके बाद के जीवन में ये सादी एवं कठोर गांधीवादी आदतें बड़ी उपयोगी रहीं। जीवन भर वे शाकाहारी, मद्यत्यागी, धूम्रपान निषेधक रहे और ठोस आहार कभी नहीं लिया बल्कि मात्र जिन्दा रहने के लिए एक के बाद एक चाय के कप पीते रहते। कभी-कभी तो वे 100-150 कप तक चाय पी जाते और थोड़े बहुत बिस्कुट खा लेते थे। काम पड़ने पर वे प्रतिदिन दो घंटा सोकर काम चला लेते थे। जीवन की इन कठोर वास्तविकताओं को देखकर ही शायद उन्होंने विवाह न करने का निर्णय लिया था। इसका उनके मित्रों को काफी खेद था। वे महसूस करते थे कि विवाह करने से उनको ऐसा साथी मिल जाता जिसकी उन्हें अत्यंत आवश्यकता थी।

तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेन्सी में स्काउट संगठित करने के सर्वप्रथम दायित्वपूर्ण कार्य को बड़ी कुशलता से सम्पन्न करने के बाद जब उन्हें मालाबार-कोचीन क्षेत्र का स्काउट कमिश्नर नियुक्त किया गया था तो वे उसके लिये सर्वथा उपयुक्त थे।

उच्च अध्ययन प्राप्त करने के उद्देश्य से वे लन्दन गए। ब्रिटेन में वर्ष 1924 में "शिक्षक डिप्लोमा पाठ्यक्रम" के लिए अपना नामांकन कराने के साथ ही उन्होंने एक वर्ष तक हर्टफोर्डशायर में सेंट क्रिस्टोफर स्कूल में इतिहास भी पढ़ाया। 1925 में उन्होंने डिप्लोमा प्राप्त किया। उन दिनों के अपने अनुभव के बारे में उन्होंने कहा है:

"इंग्लैंड में रहने के थोड़े ही समय बाद मुझे यह एहसास हो गया था कि मानवता—लोग—पुरुष, महिलाएं और बच्चे सर्वत्र समान होते हैं।"

तदनंतर मेनन "कामनवेल्थ आफ इंडिया लीग" में शामिल हो गए जिसका नाम इससे पहले "होम रूल फोर इन्डिया ब्रिटिश ऑक्जिलरी" था। उन्होंने इस "लीग" को अनेक नए विचार एवं कार्यक्रम दिए और बाद में 1928 में वे इसके संयुक्त सचिव चुने गए थे। उन्होंने "भारत के लिए स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा" के स्थान पर "भारत के लिए आजादी एवं आत्म-निर्णय" शब्दों को प्रतिस्थापित किया। लाहौर कांग्रेस में पंडित नेहरू का भाषण सुनने के बाद उन्होंने "भारत लीग" का उद्देश्य बदल कर "स्वशासन अथवा स्वराज" कर दिया।

कृष्ण मेनन ने राजनीति विज्ञान की पढ़ाई लन्दन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स के प्रो॰ हेराल्ड लास्की के निर्देशन में की थी। प्रो॰ लास्की ने मेनन को "अपना सर्वोत्तम छात्र" कहा था और यह भी कहा था "मैंने कृष्ण मेनन को पढ़ाया जरूर है लेकिन अन्त में जो भी मैं पढ़ाता था उस विषय के बारे में उसका दृष्टिकोण अपना ही होता था।"

दर्शनशास्त्र के भूतपूर्व अध्यापक प्रो॰ स्पीअरमेन के भी कृष्ण मेनन के बारे में ऐसे ही विचार थे। उनके अनुसार "कृष्ण मेनन में विलक्षण प्रतिभा और असाधारण ऊर्जा थी। मेरे विचार से वे एक महान पुरुष सिद्ध होंगे।"

मेनन ने ब्रिटेन में अपने लक्ष्य को पाने के लिए आगे बढ़ने हेतु इण्डिया लीग के अलावा लेबर पार्टी और सोशलिस्ट लीग का सहयोग भी लिया। ब्रिटेन में सोशलिस्ट लीग को कई वर्षों तक मेनन की समर्पित एवं अमूल्य सेवा प्राप्त होती रही।

मेनन जिस वर्ष लन्दन पहुंचे थे उसी वर्ष उन्होंने अपना नाम लेबर पार्टी के सदस्य के रूप में दर्ज करा लिया था बाद में इसी पार्टी के टिकट पर उन्हें सेंट पांक्राज की बोरो काउंसिल के लिए चुना गया था।

उन्होंने स्वयं को इस क्षेत्र में विलक्षण प्रतिभा के वक्ता एवं असाधारण संगठनकर्ता

सिद्ध कर दिखाया । बाद में मेनन को, बोरो के प्रति उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए, ब्रिटिश म्युनिसिपल जीवन का महान पुरस्कार "फ्रीडम आफ दि बोरो" से सम्मानित किया गया। इस सम्मान को पाने वाले एकमात्र दूसरे व्यक्ति जार्ज बर्नार्ड शॉ थे।

ब्रिटिश रेलवे यूनियन के 1945 में हुए वार्षिक सम्मेलन में भारत की स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश करने के प्रयास के लिए मेनन ही उत्तरदायी थे। इस प्रयास का सीधा परिणाम केबिनेट मिशन का भारत आना था।

लेकिन मेनन के प्रारम्भिक कार्य और लेबर पार्टी के तत्कालिन चेयरमेन प्रो० लास्की द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में यह सन्देह है कि क्या लेबर पार्टी ने अपने मंच से "भारत की स्वाधीनता का संकल्प" पारित किया था। मेनन ने लेबर पार्टी की इस बैठक में इस संबंध में कहा था:

> "लेबर आत्म-निर्णय के प्रति वचनबद्ध है। किसी अन्य व्यवस्था को भारतीय राष्ट्रीयता स्वीकार नहीं करेगी और न उससे ब्रिटेन के समाजवाद को ही मदद मिलेगी। अन्ततः इस बात को स्पष्ट तौर पर स्वीकार कर लेना चाहिए कि ब्रिटेन में समाजवाद विदेशी साम्राज्यवाद के आधार पर नहीं लाया जा सकता है। अभी भी भारतीय समस्या का मूल यही है।"

मेनन ने गांधी जी और पंडित जी की लन्दन की यात्राओं के दौरान ब्रिटेन की लेबर पार्टी के नेताओं के साथ उनकी न केवल बैठकें ही आयोजित करवाईं बल्कि 1931 के गोलमेज सम्मेलन में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई थी।

भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान लन्दन में पंडितजी के कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करते समय ही दोनों नेताओं के बीच परस्पर अटूट विश्वास और सम्मान पैदा हुआ। फासीवाद से दोनों को नफरत थी और समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता पर दोनों की आस्था थी। एक बार नेहरू ने कृष्ण, नेहरू उन्हें इसी नाम से पुकारा करते थे, को लिखा कि वह उनके बारे में क्या सोचते हैं:

> "मुझे बड़ाई करने, विशेषकर लोगों की बड़ाई करने की आदत नहीं है। लेकिन मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि आपके व्यक्तिगत सम्पर्क में आने से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। लन्दन में आपके बिना मुझे भारी कमी महसूस होती।"

दोनों के बीच बहुत अधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। इसीलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि क्यों दोनों में जीवनपर्यन्त सशक्त राजनैतिक भागीदारी बनी रही।

नेहरू और कृष्ण दोनों व्यापक विचारधारा के व्यक्ति थे। पाश्चात्य सभ्यता के दोनों प्रशंसक थे। दोनों का विचार था कि पाश्चात्य सभ्यता से पूर्वी देशों की समस्या का कुछ समाधान निकल सकता है।

कृष्ण मेनन के प्रति विश्वास और सम्मान के परिणामस्वरूप ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में नेहरू जी ने मेनन को ब्रुसेल्स में हुए अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा।

ब्रुसेल्स में मेनन द्वारा भारत की आवाज को प्रभावपूर्ण ढंग से पेश करने के कारण कांग्रेस के नेता उनसे बहुत प्रभावित हुए। तथापि मेनन ने यह महसूस किया कि अंतर्राष्ट्रीय मोर्चे पर और अधिक संगठित कार्यवाही की आवश्यकता है। तथा उन्होंने नेहरू को यह स्पष्ट कर दिया:

> "अंतर्राष्ट्रीय मामलों में न केवल एक नीति बल्कि एक सुनिश्चित कार्यवाही की आवश्यकता है। हाल के वर्षों में कांग्रेस की महत्ता से यही निष्कर्ष निकलता है।"

अपने लन्दन के एक दौरे से लौटने के पश्चात् नेहरू ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद को मेनन द्वारा लन्दन में किये गये कार्य के मूल्यांकन से अवगत कराते हुए लिखा:

> "वी० के० कृष्ण मेनन एक ऐसा आदमी है जो "इंडिया लीग" को चला रहा है। जिसका दृष्टिकोण निश्चित रूप से समाजवादी है। वे काफी कुशल, कर्मठ, विचारशील, प्रतिभासम्पन्न एवं पत्रकारिता और वामपंथी श्रमिक संघ क्षेत्र में जानीमानी हस्ती हैं। उनमें बुद्धिजीवी के गुणावगुण हैं। मैं उनसे बहुत ही प्रभावित हुआ हूं।"

इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि मेनन ने लेबर सरकार द्वारा भारत के वायसराय के रूप में लार्ड लुइस माउन्टबेटन के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मेनन ने सत्ता हस्तान्तरण के दौरान भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। लार्ड माउन्टबेटन ने मेनन की भूमिका के बारे में यह कहा है:

> "हमने अब तैयार की जा रही योजना के प्रत्येक पहलू पर और विश्व की स्थिति से इसके विशेष संबंध में, चर्चा की। मैंने देखा कि ब्रिटेन और अमरीका की सरकारों तथा समूचे विश्व की राजनीति की भावी प्रवृत्ति के बारे में उनका बड़ा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण था।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मेनन देश आजाद होने से काफी पहले से भारतीय

स्वाधीनता आन्दोलन के गैर-सरकारी राजदूत थे और वे ब्रिटेन में स्वतंत्र भारत के प्रथम सरकारी उच्चायुक्त नियुक्त हुए। लेकिन ब्रिटेन में उच्चायुक्त के रूप में उनकी नियुक्ति विवादपूर्ण रही। जब नेहरू जी ने ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री एटली को अपने आशय से अवगत कराया तो श्री एटली ने उन्हें बताया कि उनका यहां अपेक्षित स्वागत नहीं होगा। श्री एटली की प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी क्योंकि मात्र 5 वर्ष पहले ब्रिटेन मेनन को युनाइटेड किंगडम से बाहर भेजने का उपयुक्त अवसर ढूंढ़ रहा था। वे इंडिया हाउस में भारतीय राष्ट्रीय झंडा फहराते हुए उस मेनन को कैसे सहन कर पाते जिसके लिए उन्होंने कई बार इसके दरवाजे बन्द कर दिए थे? तथापि स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री का मेनन को ब्रिटेन भेजने का निर्णय श्री मेनन के लिए व्यक्तिगत प्रसन्नता की बात थी।

मेनन ने पंडित नेहरू द्वारा सौंपा गया यूरोपीय देशों के राजदूत का कार्यभार बड़ी कुशलतापूर्वक निभाया। उनके प्रयास से ही स्वतंत्र भारत कई यूरोपीय देशों से अपने राजनयिक संबंध स्थापित कर सका।

मेनन ने 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा करके 1952 में उच्चायुक्त के पद से इस्तीफा दे दिया। पंडित नेहरू ने मेनन से संयुक्त राष्ट्र में भारतीय शिष्टमंडल के उपनेता का कार्यभार निभाने का अनुरोध किया। जब श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने संयुक्त राष्ट्र में भारतीय शिष्टमंडल का नेतृत्व छोड़ दिया तो उक्त नेतृत्व की बागडोर संभालने के लिए मेनन का चयन सहज ही हो गया। उन्होंने कोरिया का मामला, अरब इजरायल विवाद, सुरक्षा परिषद की सदस्यता का मामला, कश्मीर मसला, अल्जीरिया का मामला, चीन को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता का मामला, स्वेज संकट, हंगरी निरस्त्रीकरण, और रंगभेद नीति जैसे विभिन्न मामलों पर भारत का दृष्टिकोण प्रकट किया। मेनन ने संयुक्त राष्ट्र में भारत का प्रतिनिधित्व पहली बार 1946 में वैकल्पिक प्रतिनिधि के रूप में किया। उन्होंने सभा की राजनैतिक और न्यासिता संबंधी समितियों में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया।

संयुक्त राष्ट्र में भारतीय शिष्टमंडल के नेता के रूप में इनके दृष्टिकोण के बारे में उनके आलोचक भी मानते हैं कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से मेनन उन गिने चुने महान राजनयिकों में से थे जिन्होंने यहां अपनी छाप छोड़ी। एक बार कनाडा के किसी राजनयिक ने निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

> "जब कृष्ण मेनन किसी मामले पर चर्चा करते हैं तो उनमें विचार ऐसे प्रस्फुटित होते हैं जैसे एटम में न्यूक्लिआई। वे किसी भी समस्या का चाहे कितनी भी जटिल क्यों न हो समाधान ढूंढ़ निकालते थे।"

कोरिया युद्ध को समाप्त करवाना संयुक्त राष्ट्र महासभा के सातवें अधिवेशन की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। मेनन ने कोरिया युद्ध विराम योजना को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे वे विश्वस्तर पर एक सुयोग्य राजनेता के रूप में उभरे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न हुई समस्याओं में एक विकट समस्या थी—भारत चीन समस्या। यह मामला नौ राष्ट्रों के एक ग्रूप को सौंपा गया। जब उनमें गतिरोध उत्पन्न हो गया तो मेनन ने अनौपचारिक रूप से तथा पर्दे के पीछे से उनमें मध्यस्थता की तथा उन्होंने उक्त गतिरोध का समाधान ढूंढ़ निकाला।

जब ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल ने मिस्र पर हमला किया था तथा इसके अति महत्वपूर्ण स्वेज नहर सहित एक बड़े भू-भाग को अपने नियंत्रण में ले लिया था, तो कृष्ण मेनन ने दृढ़तापूर्वक इस हमले के खिलाफ आवाज उठाई थी तथा इस भू-भाग को खाली कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ एवं विश्व जनमत को जगाने में निर्णायक भूमिका निभाई थी। इससे वे मिस्र के लोगों में इतने अधिक प्रिय हो गये थे कि कहा जाता है कि इस संकटकाल के दौरान मिस्र में जन्मे अनेक लड़कों के नाम कृष्ण मेनन रख दिए गए।

विभिन्न विषयों पर दृष्टिकोण

मेनन का निरस्त्रीकरण के संबंध में दृढ़ विश्वास था कि परमाणु निरस्त्रीकरण और परम्परागत हथियारों की कटौती के बीच कोई अन्तर स्थापित करना व्यर्थ है। इसलिए, वह प्रायः इस बात पर जोर देते थे कि एक व्यापक निरस्त्रीकरण योजना तैयार की जानी चाहिए जिसमें परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के अलावा युद्ध विराम, सभी सरकारों द्वारा उनके सैन्य प्रतिष्ठानों पर किए जाने वाले व्यय के बजट में कटौती को शामिल किया जाये। 1960 में, महासभा की राजनीतिक समिति के समक्ष बोलते हुए उन्होंने कहा था:

> "जब तक निरस्त्रीकरण सम्मेलन नहीं होता, तथा निरस्त्रीकरण के संबंध में कोई समझौता नहीं होता, तब तक इस महाविनाश के हथियारों के निर्माण एवं उपयोग पर पूरी तरह रोक लगाई जानी चाहिए। हमारा शिष्टमंडल इस बात को केवल इसी वर्ष नहीं कह रहा है बल्कि इस बात को हम आरंभ से ही कहते आ रहे हैं। इस मामले में हमने कभी भी कोई बात छिपाकर नहीं रखी है, परमाणु, ताप परमाणु तथा इसी प्रकार के हथियारों का एक ही तरीके से उपयोग किया जा सकता है। हम स्थिति में सुधार तो नहीं कर सकते हैं परन्तु इन्हें नष्ट तो कर सकते हैं।"

उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर समस्या की जिस तरह वकालत की, उससे उनकी न केवल राजनयिक योग्यताओं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून और संविधान के संबंध में

उनकी विशेषज्ञता का भी परिचय मिला। कश्मीर समस्या के संबंध में उन्होंने भारत के पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि यह विषय संयुक्त राष्ट्र संघ की समकालीन कार्यसूची से निकाल दिया गया तथा इसे एक द्विपक्षीय समस्या में परिवर्तित कर दिया गया। कश्मीर समस्या पर साढ़े सात घंटे तक लगातार दिये गये उनके ओजस्वी भाषण की एक झांकी प्रस्तुत है:

> "ऐसा क्यों होता है कि युद्ध विराम रेखा की दूसरी तरफ पाकिस्तानी अधिकारियों के दमन एवं अत्याचार से लोगों को मुक्त कराने के संबंध में हमें कभी कोई आवाज सुनने को नहीं मिली? ऐसा क्यों है कि हमने इस प्रकार की कोई आवाज नहीं सुनी कि इन लोगों को दस वर्षों में मतपत्र के दर्शन तक नहीं हुए है? फिर किस मुंह से सुरक्षा परिषद अथवा इसके समक्ष आकर कोई व्यक्ति हमारी तरफ रहने वाले लोगों के लिए जनमत संग्रह की मांग कर सकता है जो मतदान में भाग लेते हैं, जिन्हें वाक् स्वातंत्रय प्राप्त है तथा जो अनेक स्थानीय निकायों के अधीन कार्य कर रहे हैं?"

भाषण देने के पश्चात एकाएक वे बेसुध होकर गिर पड़े, किन्तु उनके डाक्टर द्वारा मना किए जाने के बावजूद वे अपराह्न तथा दूसरे दिन के सत्र में भाग लेने के लिए तुरंत तैयार हो गये।

इस प्रकार, मेनन जब तक संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के प्रतिनिधि रहे, उस दौरान उन्होंने संयुक्त राष्ट्र की प्रत्येक कार्यवाही में अपनी छाप छोड़ी।

विश्व का ध्यान आकर्षित करने वाले अनेक विषयों के बारे में कृष्ण मेनन सदैव नेहरू को सलाह दिया करते थे। सर्वप्रथम उन्होंने ही नेहरू को यह सलाह दी थी कि भारत को सैन फ्रांसिस्को में जापान के साथ एक पक्ष के रूप में समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहिए। इसके स्थान पर, उन्होंने जापान के साथ एक अलग द्विपक्षीय समझौते का समर्थन किया जिसमें जापान को एक बराबर का हिस्सेदार माना गया था और न कि एक पराजित राष्ट्र। इसका जापान के लोगों के मस्तिष्क पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा तथा इसका मनोवैज्ञानिक असर पड़ा। जो अभी भी कायम है।

भारत की विदेश नीति के प्रतिपादक

कृष्ण मेनन सर्वप्रथम 1956 में मद्रास से राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए तथा बिना विभाग के मंत्री नियुक्त किए गए। किन्तु, वह भारत की विदेश नीति से सम्बन्धित मामलों को देखते रहे। उनका विश्वास था कि भारत की विदेश नीति निम्न बातों की ओर निर्दिष्ट की जानी चाहिए:

(क) मित्र देशों के साथ मित्रता को सुदृढ़ करना;

(ख) विघटनकारी शक्तियों को निष्प्रभावित करना;

(ग) राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कायम रखना तथा संवर्धन करना; और

(घ) विश्वशांति को बढ़ावा देना।

1957 में, लोक सभा के लिए निर्वाचित होने पर, नेहरू ने उन्हें रक्षा मंत्री नियुक्त किया। इससे पहले, उत्तर बम्बई निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव प्रचार के दौरान, नेहरू ने कृष्ण मेनन को न केवल भारत की विदेश नीति के प्रवक्ता एवं प्रतिपादक के रूप में, बल्कि इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले एक व्यक्ति के रूप में भी प्रस्तुत किया था। नेहरू ने कृष्ण मेनन द्वारा तैयार की गई भारत की विदेश नीति के नाम पर लोगों से उनके लिए वोट मांगा। फलतः कृष्ण मेनन मतों के भारी अन्तर से विजयी हुए।

जवाहरलाल नेहरू का विचार था कि कृष्ण मेनन के संयुक्त राष्ट्र संघ में लम्बे एवं प्रचुर अनुभव ने उन्हें राष्ट्रों के परस्पर संबंधों के बारे में आवश्यक नजरिया प्रदान किया था जो देश के लिए उपयुक्त रक्षा नीति तैयार करने में उपयोगी सिद्ध होगा।

रक्षा मंत्री के रूप में

कृष्ण मेनन ने रक्षा मंत्री के रूप में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता को सुदृढ़ करने पर जोर दिया था। उन्होंने घोषणा की कि रक्षा उत्पादन आधार को देश के आर्थिक एवं औद्योगिक आधारभूत ढांचे से अलग नहीं किया जा सकता। अवादी में टैंक कारखाना, बंगलौर में भारत इलेक्ट्रानिक्स और हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स तथा कानपुर में एवरो एवम् कुछ ऐसे महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जो कृष्ण मेनन की स्मृति को अनन्तकाल तक जीवंत बनाए रखेंगे।

कृष्ण मेनन का दृढ़ विश्वास था कि भारत अपनी रक्षा आवश्यकताओं के लिए पश्चिमी देशों पर पूरी तरह निर्भर नहीं रह सकता है। रक्षा के मामले में आत्मनिर्भरता समय की मांग थी तथा हमें किसी भी कीमत पर इसे प्राप्त करना था।

अपने मंत्रित्व काल के दौरान, उन्होंने उन लोगों के मानसिक विकास पर ध्यान दिया जो उनकी ओर निहार रहे थे। उन्हीं के प्रयास से पुणे में आर्म्ड फोर्सेज मेडिकल कालेज

की स्थापना हुई। उन्होंने उन कर्मचारियों के लिए सांध्य कक्षाओं को आरंभ करने का दायित्व भी ग्रहण किया, जो इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर की परीक्षाओं के लिए तैयारी करना चाहते थे। उन्होंने नेशनल कैडेट कोर और प्रादेशिक सेना को लोकप्रिय बनाने के लिए भी व्यक्तिगत रूप से अत्यधिक रुचि ली।

रक्षा मंत्री के रूप में कृष्ण मेनन के कार्य-काल के दौरान, दिसम्बर, 1961 में गोवा का विलय तथा इसके दूसरे वर्ष चीन के साथ संघर्ष, ऐसी दो प्रमुख घटनाएं थीं जिनकी ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ। उनका विचार था कि यदि भारत ने 1947 में ही पुर्तगालियों को देश से बाहर कर दिया होता, तो विश्व में किसी ने भी कुछ नहीं कहा होता, बल्कि वे इसकी अपेक्षा ही करते। वह पूछा करते थे कि जब ब्रिटिश साम्राज्य यहां से समाप्त हो गया, तो पुर्तगालियों के साम्राज्य को क्यों बने रहना चाहिए। उनका विश्वास था कि गोवा का मामला तो एक उपनिवेश से मुक्ति का मामला है। अक्तूबर, 1959 में बम्बई में एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने घोषणा की:

> "गोवा हमारा भू-भाग है। इसे मुक्त कराना हमारे लिए परमावश्यक है, यह हमारे अधूरे कार्य का हिस्सा है। गोवा की भूमि को बलपूर्वक मुक्त कराना है अथवा समझा-बुझा कर, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर हमें स्वयं ही निर्णय लेना होगा।"

कृष्ण मेनन ने स्थिति का नियंत्रण अपने हाथ में लिया और तीनों सेनाध्यक्षों से सलाह कर उन्होंने एक तिथि निश्चित कर दी। हमारी सशस्त्र सेनाओं ने ऐसी सटीक कार्रवाई की कि 30 घंटों के अन्दर गोवा मुक्त हो गया। यह सैनिक इतिहास की सहजतम विजयों में से एक थी।

चीन के साथ अक्तूबर 1950 तक भारत के सौहार्दपूर्ण संबंध थे, जब अचानक चीन ने आपातिक ढंग से तिब्बत पर कब्जा कर लिया। दोनों देशों के मध्य टिप्पणियों का तीखा आदान-प्रदान हुआ। लेकिन चीन तिब्बत के बारे में भारत के दृष्टिकोण को समझ नहीं सका और उसने यही माना कि भारत साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ मिल कर चल रहा है।

तदुपरांत चीन ने भारत को अपने शत्रुतापूर्ण रवैये से उकसाना प्रारम्भ किया और लद्दाख में खुर्नक दुर्ग पर कब्जा कर लिया तथा एक मानचित्र प्रकाशित किया जिसमें भारत के कुछ भागों को "चीन की लगभग सीमाओं के भीतर" दर्शाया गया था।

1959 में भारत को सर्वथा यह विश्वास हो गया था कि चीन के उस समय के रवैये के चलते, सीमा-विवाद को बातचीत और सद्भावना के द्वारा सुलझाने की कोशिश करने से कोई लाभ नहीं है। रक्षा मंत्री, कृष्ण मेनन ने एक नयी सीमा सड़क की आवश्यकता

अनुभव की और लद्दाख क्षेत्र में लगभग 4000 वर्ग मील क्षेत्र के चारों ओर नयी सीमा सड़कें बनवा दीं। 21 अक्तूबर, 1959 को चीन ने पहले पहल एक भारतीय गश्ती दल पर कोंगका दर्रे के पास गोलियां चलायीं और कुछ समय बाद भारत पर पूरी तैयारी से आक्रमण कर दिया। यद्यपि भारत के पास एक आपातकालीन रक्षा योजना थी किन्तु अनेक कारणों से वह कारगर नहीं हो सकी। अचानक आक्रमण होने, शत्रु सेनाओं का बड़ा आकार, वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों के मध्य प्रभावी समन्वय का अभाव तथा व्यक्तिगत अविश्वास, बर्फ से ढ़की पर्वतीय श्रृंखला जो भारतीय सेना के लिये बिल्कुल नयी थी, घटिया श्रेणी के हथियार, प्रभावी संचार सुविधाओं का अभाव आदि भारत के खराब प्रदर्शन के प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं।

इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद, संसद के अन्दर तथा बाहर कृष्ण मेनन के त्यागपत्र के लिये शोर मचा। यहां तक कि सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने भी स्वयं उनके त्यागपत्र की मांग की। किन्तु, युद्धकाल के दौरान उनकी भूमिका पर समाचारपत्रों ने बड़ा कठोर रुख अपनाया। उन्होंने यहां तक कहा कि कृष्ण मेनन ने जानबूझ कर देश को नीचा दिखाया।

नवम्बर, 1962 में कृष्ण मेनन ने रक्षा मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उसके बाद उन्हें रक्षा उत्पादन मंत्री नियुक्त किया गया किन्तु उन्हें सांसदों के अत्यधिक विरोध के कारण उस पद से भी इस्तीफा देना पड़ा। इन्दिरा गांधी ने अपनी पुस्तक "माई ट्रुथ" में कहा था कि कृष्ण मेनन की मंत्रिमंडल की विदाई के साथ ही उनके (इंदिरा जी के) पिताजी का स्वास्थ्य गिरने लगा।

1967 में कृष्ण मेनन को संसदीय चुनावों में मुंबई से कांग्रेस का टिकट नहीं दिया गया। उन्हें यह जानकर दुख हुआ कि नेतृत्व का यह निर्णय इस बात से भी प्रभावित था कि वह मुंबई के नहीं थे। फिर भी, उन्होंने 1969 में पश्चिम बंगाल के मिदनापुर से निर्दलीय के रूप में चुनाव लड़े और संसद के लिये चुने गये। 1971 में, वह पुनः त्रिवेन्द्रम से निर्दलीय के रूप में चुने गये।

न्यायविद् के रूप में

सरकार से अपना त्यागपत्र देने के बाद, मेनन ने प्रगतिशील वकीलों के एक समूह के साथ उच्चतम न्यायालय में एक वरिष्ठ अधिवक्ता के रूप में वकालत शुरु कर दी। उनकी रुचि श्रमिकों संबंधी मामलों में भी थी और उन्होंने शुल्क लिये बिना भी इनकी पैरवी की।

उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने वकील के रूप में मेनन के कैरियर का संक्षेप में इस तरह बखान किया है:

"उनका न्यायविद् तुच्छ समस्याओं से नहीं, बल्कि महान मानवीय गुणों से भरा था----------वह नीरस क्षेत्रों में अटकते हैं लेकिन हमारी विधिक-राजनैतिक प्रणाली के उच्चतर मूल्यों के संबंध में वीरोचित रहते हैं"

वह दिल्ली विश्वविद्यालय के अतिथि प्रोफेसर थे। उहोंने "द सेंचुरी" नामक पत्रिका भी आरंभ की।

सरकार से त्यागपत्र देने के बाद, दो घटनाओं से मेनन को बहुत चोट पहुंची थी; एक घटना थी नेहरू जी की मृत्यु और दूसरी थी कांग्रेस पार्टी से उन्हें त्यागपत्र दिलाने वाली परिस्थितियां। कांग्रेस के अन्दर तथा बाहर दोनों जगह, आधुनिक भारत को गढ़ने वाले व्यक्ति के रूप में उनकी उत्कृष्ट छवि उनकी अप्रतिम बौद्धिकता पर आधारित थी।

अपने जीवन के अंतिम वर्ष, 1974 में वह अस्पताल आते जाते रहे। जब वह अस्पताल से बाहर होते थे, देश के विभिन्न भागों में होने वाले सम्मेलनों के निमंत्रण स्वीकार कर लेते थे।

6 अक्तूबर, 1974 की सुबह जब मृत्यु का आगमन हुआ, तो दूर और निकट से कृष्ण मेनन की विरासत और प्रसंगिकता को उजागर करने वाली श्रृद्धांजलियां आने लगी।

प्रधान मंत्री, इन्दिरा गांधी ने उस घटनापूर्ण जीवन पर सबसे उपयुक्त टिप्पणी की:

"एक ज्वालामुखी नहीं रहा। कृष्ण मेनन दृढ़ धारणाओं के व्यक्ति थे, जिनमें प्रखर बौद्धिक शक्ति और देश के प्रति आवेशपूर्ण समर्पण भाव था। यूरोप में हमारे स्वातंत्रय आंदोलनों के प्रवक्ता के रूप में तथा अन्य देशों के उग्रपंथी आंदोलनों से एक सम्पर्क के रूप में उनका अग्रगामी कार्य हमारे राष्ट्र के इतिहास का हिस्सा है.....उन्होंने एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण के लिए जेहाद छेड़ा था। देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिए उन्होंने निष्ठा से काम किया।"

उनका राजनैतिक विरोधी होते हुए भी जयप्रकाश नारायण ने इन शब्दों में शोक व्यक्त किया:

"श्री कृष्ण मेनन अपने पूरे राजनैतिक कैरियर के दौरान एक विवादास्पद व्यक्ति बने रहे। परन्तु उनके प्यारे शत्रु भी उन पर पाखन्ड अथवा निष्ठा हीनता का आरोप नहीं लगा सकते।"

आचार्य कृपलानी, जिन्हें 1962 में उत्तरी बम्बई संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से कृष्ण मेनन के हाथों पराजय का मुख देखना पड़ा था, की टिप्पणी यह थी:

"कृष्ण मेनन दृढ़ धारणाओं वाले साहसी व्यक्ति थे और अपनी राय को जोर देकर

अभिव्यक्त करने से कभी हिचकिचाते नहीं थे। उन्हें भारत की आजादी की आवाज को इंग्लैंड में बड़े उत्साह एवं मनोयोग से उठाया, और इंडिया लीग के माध्यम से काफी समर्थन जुटाया।"

विदेशों से आने वाली श्रद्धांजलियों में, माउंटबेटन द्वारा भेजी गयी श्रद्धांजलि में कहा गया था:

"जिन दो देशों से वह बहुत ही प्यार करते थे उनकी उन्होंने महान सेवा की। दोनों में से कोई भी देश उनके उपकार के ऋण को भूले नहीं।"

संदर्भ स्रोत

1. माधवन कुट्टी, वी० के० वी० के० कृष्ण मेनन (बिल्डर्स आफ माडर्न इंडिया सीरीज) नई दिल्ली, प्रकाशन प्रभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. जार्ज, टी० जे० एस०: कृष्ण मेनन—ए बायोग्राफी। लंदन, जोनाथन केप।
3. मूर्ति, आर० के०: प्रोफाइल आफ कृष्ण मेनन (दी माडर्न रिव्यू, जनवरी, 1975)

भाग—दो

उनके विचार

(श्री वी० के० कृष्ण मेनन द्वारा संसद में दिये गये कुछ चुनिन्दा भाषणों के उद्धरण)

2

जेनेवा कन्वेन्शन्स बिल*

अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि 12 अगस्त, 1949 को जेनेवा में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, जिनमें भारत भी एक पक्षकार था, और उनसे संबंद्ध प्रयोजनों को कार्यरूप देने वाले बिल पर विचार किया जाये"।

इस बिल में 20 खंड और 4 अनुसूचियां हैं। इन चारों अनुसूचियों में उन चार समझौतों का विवरण है जो अगस्त, 1949 में इसी तारीख को जेनेवा में किये गये थे। निस्सन्देह सदन इस बिल के खंडों पर बाद में विस्तार से विचार करेगा, परंतु इसका उद्देश्य यह है कि हमारे नगरपालिका कानून को इन कन्वेन्शनों के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने का अधिकार होना चाहिये जिन्हें पूरा करने के लिए हमारी सरकार वचनबद्ध है।

विशेषकर दो कारणों से इस विषय की पृष्ठभूमि में कुछ हद तक जाना अनुपयुक्त नहीं होगा। सर्वप्रथम, ये सभी कन्वेन्शन मानवीय सिद्धान्तों पर आधारित हैं। जहां यह सच है कि आज वे इस रूप में विशेषकर राष्ट्रसंघ द्वारा मानवीय अधिकारों की घोषणा किये जाने के बाद, व्यापक हो गये हैं, वहीं इसका एक लंबा इतिहास भी है। परंतु इसके इतिहास की खोज करने से पहले दो बातों में अन्तर समझना आवश्यक है। विभिन्न राष्ट्रों के बीच समझौते हुए हैं और ये समझौते सम्भवतः कानूनी स्वरूप के हैं और इनमें युद्ध के पक्षों पर विचार किया गया है। परन्तु इस बिल में इन पहलुओं पर विचार नहीं किया गया है। इसमें युद्ध के पहलू पर भी प्रकाश नहीं डाला गया है। बल्कि इसमें उन स्थितियों पर, विशेषतः उन मानवीय स्थितियों पर विचार किया गया है जिनका युद्ध छिड़ जाने की स्थिति में अवश्य ही पालन किया जाना चाहिए। महोदय, इस संदर्भ में हमें इन्टरनेशनल रेड क्रास के प्रति

*लोक सभा वाद-विवाद, 9 फरवरी, 1960

908 LS—5

आभार व्यक्त करना चाहिए जिनके सौजन्य से विगत सौ वर्षों से ऐसे समझौते किये जाते रहे हैं।

सन् 1860 के आसपास स्विटजरलैंड के एक सज्जन ने दो इच्छाएं व्यक्त की थीं, पहली यह थी कि एक ऐसी सार्वजनिक समिति की स्थापना की जाये जो युद्ध में घायल हुए व्यक्तियों की देखभाल करे और दूसरे उस समिति को सभी सरकारों द्वारा मान्यता दी जाये। जहां तक मुझे याद है, अगले वर्ष, सन् 1863 में इन्टरनेशनल रेड क्रास की स्थापना की गई और सन् 1864 में इस विषय से संबद्ध प्रथम समझौता किया गया। अध्यक्ष महोदय, स्मरण रहे कि सन् 1864 लगभग वही समय था जबकि नेपोलियन द्वारा लड़े गये युद्धों के बाद वियना कांग्रेस की स्थापना होने के साथ ही साथ विश्व में शान्ति के प्रयास भी किये गये और उसके साथ ही साथ और भी युद्ध छिड़ गये तथा वेस्टफालिया शांति योजना कार्यान्वित की गई जिसे इतिहास में शांति स्थापना की दिशा में एक अति महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। इस प्रकार वर्ष 1864 में अनेक समझौतों की शुरूआत हुई जिनमें बाद में संशोधन किये गये। बाद में अन्य समझौते किये गये जिन में सन् 1907, 1929 में और 1939 में हेग में किये गये समझौते उल्लेखनीय हैं।

इस बिल की अनुसूची में 4 समझौतों का विवरण है जो 4 पृथक-पृथक परंतु संबद्ध विषयों के बारे में है। एक में सशस्त्र सेनाओं के घायलों के और अन्य घायल व्यक्तियों के उपचार पर विचार किया गया है। दूसरे में उन व्यक्तियों के उपचार पर विचार किया गया है जो किसी जहाज में यात्रा के दौरान जहाज के क्षतिग्रस्त हो जाने पर घायल हो जाते हैं और जिनका उपचार उसी अवस्था में किया जाना अपेक्षित होता है। इन समझौतों में तीसरा और सब से महत्वपूर्ण समझौता युद्धबन्दियों के बारे में हैं। परंतु जैसाकि मैंने अपनी पूर्व टिप्पणियों में कहा है कि शायद चौथा समझौता ही मानवीय सभ्यता के विकास के दृष्टिकोण से सब से ज्यादा महत्वपूर्ण है जिसमें पहली बार युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण असैनिक व्यक्तियों के उपचार पर विचार किया गया है।

अध्यक्ष महोदय, यह बात पूछी जा सकती है जब इन समझौतों का सरकार द्वारा समर्थन किया गया और हमारी व्यवस्था में समर्थन का अधिकार राष्ट्रपति के पास है, तो इस मामले को सदन के समक्ष क्यों नहीं लाया गया। ऐसा इसलिए है क्योंकि जैसाकि मैंने कहा भी है, कि उन्हें कार्यान्वित करने के लिए हमारे स्थानीय कानून को अधिकार चाहिए। कानून बनाने वाली कुछ शक्तियां हैं जिनके बारे में इस बिल में प्रावधान किया जाना

चाहिये। इस बिल में इस बिल के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए किये जाने वाले अपराधों के संबंध में भी न्यायालयों को भी कुछ शक्तियां प्रदान करने का प्रस्ताव है। युद्ध के तुरंत बाद और न्यूरेमबर्ग मुकदमे के पश्चात् तथा उसमें किये गये अत्याचारों का प्रचार और 1939 के युद्ध की नई परिस्थितियां इस तरह के समझौतों के तुरंत आयोजन करने के लिये जिम्मेदार थीं। परंतु उन लोगों को यह बात साफ-साफ बता देनी चाहिये जो इन मामलों के अग्रणी बन रहे हैं कि 1939 के समझौते के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए, सन् 1940 में एक सम्मेलन आयोजित करने का तथा इसे वर्तमान स्तर तक लाने का प्रस्ताव रखा गया था। इसके पश्चात् युद्ध छिड़ गया और ये सभी प्रस्ताव जहां के तहां रह गये।

सन् 1949 में जेनेवा में तीन तरह की विचारधारा के लोगों की एक बैठक हुई। पहले वर्ग के वे लोग थे जो युद्ध के अत्याचारों से बुरी तरह प्रभावित हुए थे। दूसरे वर्ग में वे लोग थे जो तटस्थ रहे थे और जिन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया था। तीसरे वर्ग में हमारे जैसे देश के लोग आते थे जिन्होंने युद्ध में भाग तो लिया परंतु उसके बारे में एक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया था। अतः सन् 1946 से इन्टरनेशनल रेड क्रास ने अनेक बैठकों का आयोजन किया और इसके परिणामस्वरूप सन् 1949 में जेनेवा में एक राजनयिक सम्मेलन बुलाया गया। हमारी सरकार ने इन समझौतों के आयोजन में बहुत ही महत्वपूर्ण और अग्रणी भूमिका निभाई थी। महोदय, श्री धीरेन मित्र, जो उस समय के उच्चायुक्त के कानूनी सलाहकार थे, और उनके कानूनी सहायक, श्री नारायण इस सम्मेलन में हमारे प्रतिनिधि थे। महोदय, श्री धीरेन मित्र पहली समिति के चेयरमैन बने और हमारे प्रतिनिधिमण्डल ने इन समझौतों के आयोजन में सराहनीय कार्य किये।

मैं बारी-बारी से उन सब मुद्दों की चर्चा करूंगा। अब मैं उस घटनाक्रम के बारे में कहना चाहूंगा जो सब से पहले, सन् 1864 में उसके बाद 1906 में, उसके बाद 1929 में और फिर हाल ही में 1949 में हुये समझौतों में घटित हुए। पहले समझौते में उन लोगों पर विचार किया गया जो जमीनी युद्ध के कारण प्रभावित हुए थे। मजे की बात यह है कि पहला समझौता दोनों में से दूसरा समझौता है। जहाज में यात्रा करते समय जहाज के क्षतिग्रस्त होने पर लोगों को होने वाली क्षति से संबंद्ध समझौता पहले किया गया। जमीनी युद्ध में घायल और रोगग्रस्त लोगों की अवस्थाओं से संबद्ध समझौता सर्वप्रथम सन् 1863 में पारित किया गया और बाद में सन् 1875, 1906 तथा 1929 में उसमें संशोधन किये गये और उसमें अंतिम रूप से सन् 1949 में संशोधन किया गया।

समुद्री युद्ध में घायल और क्षतिग्रस्त हुए लोगों की स्थिति में सुधार लाने से संबद्ध समझौता सन् 1907 में हुआ और वर्ष 1949 में उसमें संशोधन किया गया। युद्धबन्दियों

से सम्बन्धित समझौता सबसे पहले सन् 1929 में हुआ और बाद में 1949 में इसमें संशोधन किया गया। असैनिक लोगों से संबद्ध समझौते का प्रारूप पहली बार सन् 1949 में तैयार किया गया और मैं इस संबंध में अपने भाषण के अन्त में जरूर कुछ कहना चाहूंगा।

यदि सदन के माननीय सदस्य इस यथामुद्रित बिल को पढ़ेंगे तो वे पायेंगे कि इन समझौतों में कुछ भाग एक समान हैं और इन समझौतों में से प्रत्येक के अनुच्छेद 2 में निम्नलिखित प्रावधान हैः

"वर्तमान समझौता घोषित युद्ध अथवा ऐसे किसी अनय सशस्त्र संघर्ष के सभी मामलों में लागू होगा जो दो या दो से अधिक घोर विरोधी पक्षकारों "के बीच उत्पन्न हुआ हो चाहे उनमें से किसी एक ने भी युद्ध की घोषणा न की हो।" यह स्थिति पूर्व स्थिति से और आगे की स्थिति है।"

"यह समझौता उन सभी मामलों में भी लागू होगा जिनमें किसी घोर विरोधी पक्षकार के क्षेत्र पर आंशिक या पूर्ण रूप से कब्जा किया गया हो, चाहे उस कब्जे पर किसी प्रकार का सशस्त्र विरोध न भी किया गया हो।"

"यद्यपि, युद्धरत शक्तियों में से कोई एक वर्तमान समझौते का पक्षकार न भी हो तो भी वे शक्तियां जो उसमें शरीक रही हैं, अपने पारस्परिक संबंधों से उससे बंधी रहेंगी। वे उस शक्ति के संदर्भ में इस समझौते से और भी बंधे रहेंगे, यदि दूसरा पक्ष उसके उपबंधों को स्वीकार करता हो और उन्हें लागू भी करता हो।"

आप लोग यह महसूस करेंगे कि यह समझौता युद्ध के मामले में एक ही जैसे देशों के लिये व्यापक रूप से लागू हुआ था। ये परिभाषायें, जिनमें अधिकांश राष्ट्रों को सम्मिलित किया गया था, उस समय विश्व में विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये, जेनेवा समझौते में स्वीकृत हुई थी क्योंकि अधिकांशतः युद्धों ने प्रथम महायुद्ध ने और खासतौर से दूसरे महायुद्ध ने असैनिक लोगों पर भारी कुप्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया था और बहुत अधिक संख्या में लोग हताहत होने जा रहे थे। इस कारण संसार में परिस्थितियों ने एक नया मोड़ ले लिया जिनसे मानव मन उथलपुथल होने लगा। और यही कारण है कि इतनी व्यापक परिभाषा का अभ्युदय हुआ।

यदि वाद विवाद के दौरान इन मामलों को विस्तार से जानने की आवश्यकता समझी गई, तो आप की अनुमति से मैं उसे विस्तार से बताऊंगा। परंतु मैं इन में से सब से महत्वपूर्ण चौथे समझौते के बारे में कुछ कहना चाहूंगा। चौथे समझौते में

असैनिक लोगों को शामिल किया गया है। इस मामले में हमें अत्यंत भावुक होने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि जहां यह समझौता असैनिक लोगों पर पूर्णतः लागू होता है, वहीं विगत अनुभव यह रहा है कि जब एक बार युद्ध छिड़ जाता है तो उस समय पूरी स्थिति तत्कालीन राजनैतिक दृष्टिकोण पर निर्भर हो जाती है। मैं समझता हूं कि 1907 की कन्वेंशन-तब तक हवाई कार्रवाई को सम्भावित युद्ध का भाग माना जाने लगा था—में केवल सैनिक ठिकानों पर ही बमबारी करने का प्रावधान था, लेकिन इसमें एक परन्तुक जुड़ा हुआ था जिसके अनुसार यदि आस-पास कोई ऐसा क्षेत्र है जो सैनिक ठिकानों से संबद्ध हो तो उस पर भी भीषण बमबारी की जा सकती थी। परन्तु जो भी हो, जर्मनी पर लगातार दिन-रात की बमबारी तथा और भी जो बमबारी हुई उससे हुए युद्ध के अनुभव से इस समझौते की धज्जियां उड़ गईं। इसलिए यद्यपि चौथी कन्वेंशन में आधुनिक परमाणु तथा हाइड्रोजन युद्ध की स्थिति में असैनिकों की सुरक्षा का प्रावधान है, कानून की दृष्टि से इसकी बहुत कम मान्यता है, क्योंकि यह उन राजनीतिक समझौतों पर निर्भर करता है जो इस दौरान किए जाते हैं।

इस विधेयक को ही यदि हम लें, तो इसका पहला अध्याय परिभाषाओं से संबंधित है। दूसरा अध्याय शायद सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा हमारे कानून में परिवर्तन किया गया है, अर्थात अब तक हमारे न्यायालयों का क्षेत्राधिकार हमारे नागरिकों या हमारे देश में रह रहे विदेशी नागरिकों द्वारा किए गए अपराधों तक सीमित था। इस विधेयक के माध्यम से एक ऐसा परिवर्तन किया गया है जो अन्य देशों में स्वीकार कर लिया गया है और इससे हमारी पुरानी कानून प्रक्रिया में परिवर्तन लाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो इस कन्वेंशन का उल्लंघन करने वाले हैं, चाहे वे इस देश के नागरिक हैं या नहीं, चाहे अपराध इस देश में किया गया है या नहीं, वे हमारे न्यायालयों के नागर तथा अपराधिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आएंगे। यह हमारी मौजूदा कानूनी व्यवस्था से भिन्न है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई अपराधी इन कन्वेंशनों का उल्लंघन करके कोई अपराध करता है और यदि अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो हमारे देश का नागरिक नहीं है, यदि अपनी गिरफ्तारी के समय वह हमारे देश में है तो वह हमारे न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत होगा और तदनुसार दण्डित होगा।

खण्ड 1 में इन अपराधों के लिए दण्ड निर्धारित किया गया है और जिन अपराधों का उल्लेख किया गया है वे सभी कन्वेंशनों में एक समान हैं। दण्ड निम्नलिखित हैं:

"ऐसे अपराध में जहां किसी एक कन्वेंशन के प्रावधानों के अधीन रक्षित व्यक्ति की जानबूझ कर हत्या की गई हो, दण्ड, मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास है; तथा

अन्य मामलों में सजा कारावास है जिसी अवधि चौदह साल तक हो सकती है।"

ऐसे अनेक अपराध हैं जिनका उल्लेख किया गया है: हत्या, उत्पीड़न, अंगहीन करना और इसी प्रकार के अन्य अपराध जिनका कन्वेंशनों में उल्लेख है। जो इन अपराधों के लिए दण्ड के भागी हैं, उन्हें मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास हो सकता है "और अन्य मामलों में कारावास जिसकी अवधि चौदह साल तक हो सकती है।"

इन सभी अपराधों के अतिक्रमण का उल्लेख संबंधित अनुच्छेदों में किया गया है, प्रथम कन्वेंशन के अनुच्छेद 50 में दूसरी कन्वेंशन के अनुच्छेद 51 में तीसरी कन्वेंशन के अनुच्छेद 130 में तथा चौथी कन्वेंशन के अनुच्छेद 147 में। उन सभी में अतिक्रमण के लिए दण्ड का प्रावधान है। यह विधेयक का प्रथम भाग है जो सदन के विचाराधीन है।

मैं सदन का ध्यान एक बार फिर इस बात की ओर दिलाना चाहूंगा कि इस मामले में हम देश के सामान्य अपराधिक कानून के दायरे से बाहर जा रहे हैं। ये सभी संज्ञेय अपराध हैं।

तीसरा अध्याय जो इस विधेयक का दूसरा मुख्य भाग है, अधिकारों से संबंधित है। पहले मैं उन दण्डों का उल्लेख करुंगा जो कन्वेंशनों का उल्लंघन करने पर निर्धारित किए गए हैं। युद्ध की स्थिति में, यदि किसी देश में नजरबन्दियों की संख्या बहुत अधिक है और यदि ये मामले युद्ध के दौरान या युद्धस्थिति में या उसके तुरन्त बाद विचार के लिए आते हैं, तो व्यक्तियों के अधिकार चाहे वे शत्रु हैं, चाहे वे ऐसे लोग हैं जो शत्रुता पूर्ण कार्यों में लगे हैं, प्रायः नजरअन्दाज कर दिए जाते हैं। इसलिए, चूंकि यह कन्वेंशन मानवतावादी उद्देश्यों पर आधारित हैं, पूरी पृष्ठभूमि तथा नजरिया भी मानवतावादी होना चाहिए। अध्याय 3 में विभिन्न प्रावधान हैं और उन सभी का उद्देश्य संबंधित व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करना है। इन अधिकारों में यह अधिकार भी शामिल हैं कि जब "किसी रक्षित नजरबन्द को किसी अपराध के लिए मुकदमा चलाने के वास्ते किसी ऐसे न्यायालय के सामने लाया जाता है जिसे उस व्यक्ति को मृत्युदण्ड देने की शक्ति है" तो उसे कानूनी रक्षा का अधिकार, नजरबन्दी के स्थान की सूचना का अधिकार, नजरबन्दी, निवास तथा उस अपराध की सूचना का अधिकार जो उस पर लगाया गया है, मुकदमा आरम्भ करने से पहले दिया जाएगा और उसे यह सूचना उस समय भी दी जाएगी जब वह नजरबन्दी में हो यद्यपि वह हमारा नागरिक नहीं है या उस समय वह शत्रु देश का एक अंग बन चुका हो।

यदि बन्दी चाहे तो कोई अन्य व्यक्ति भी उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है। इस अध्याय में नजरबन्दों के अधिकारों, रक्षित व्यक्तियों के अधिकारों तथा युद्ध-बन्दियों के अधिकारों का विस्तृत उल्लेख है। यह कोई असामान्य बात नहीं है कि युद्ध बन्दियों को ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जा रहा है जिनके लिए उन्हें प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। युद्धबन्दी को धमकाया जाता है तथा उससे पूछताछ की जाती है। सामान्यतः युद्धबन्दी को केवल अपना नाम, पता तथा रेजीमेंट नम्बर या ऐसी ही अन्य जानकारी देने के लिए कहा जा सकता है। लेकिन हकीकत में स्थिति इससे भिन्न है तथा इसकी सूचना संबंधित देशों को दे दी गई है। इसमें अपील आदि का भी प्रावधान है।

चौथे अध्याय का संबंध विधेयक से संबंधित सामग्री के तीसरे सैट से है, यथा, रेडक्रास के प्रतीक चिनह, जेनेवा क्रास आदि की रक्षा। तीन प्रतीक चिन्हों की रक्षा का उल्लेख किया गया है। उनकी रक्षा लगभग उसी तरह की जाएगी जैसे ट्रेड मार्क या पेटेन्ट अधिकरों की, जिनका उल्लंघन करने पर कानून के अंतर्गत दण्ड दिया जा सकता है।

यह इस विधान की मुख्य रूपरेखा है। मैं नहीं जानता कि इस संबंध में मुझे इतने विस्तार में जाने की आवश्यकता है या नहीं, सिवाए इसके कि मैं इस बात पर पुनः बल देना चाहूंगा कि चौथी कन्वेंशन विश्व में घटी घटनाओं से भिन्न है। यूं कहिए कि यदि संबंधित लोग किसी अन्य देश द्वारा अधिकृत क्षेत्र में हैं या वे किसी अनुशासित संस्था के अंग हैं, तब भी वे इन कन्वेंशनों की परिधि में आएंगे। उदाहरण के लिए हमें हाल ही में कुछ कठिनाईयां उठानी पड़ीं। जब हमारे गश्ती दल विधिवत विरचना से आगे बढ़ते हैं, यदि वे दूसरे व्यक्ति के क्षेत्र में भी पकड़े जाते हैं जो हमारी सीमा से बाहर है, और यदि वे हिरासत में हैं, तो वे इस कन्वेंशन के प्रावधानों के अधीन माने जाएंगे। सर्वप्रथम, यदि संबंधित देश इस कन्वेंशन में शामिल है तो निस्संदेह वह देश जिम्मेदार हो जाता है। परन्तु यदि संबंधित देश इस कन्वेंशन में शामिल नहीं भी है, वह इसे स्वीकार कर सकता है। इस मामले विशेष में चीन कन्वेंशन का भागीदार है और इसलिए इस प्रकार की गई कोई भी कार्रवाई कन्वेंशन के प्रावधानों के अंतर्गत आती है।

जैसा मैंने कहा, इनकी पांच या छह वर्ष पूर्व पुष्टि की गई थी तब से अब तक न हमारे देश में और न अन्यत्र इस दिशा में कोई अधिक कार्य हुआ। नए प्रावधान जोड़ दिए गए हैं जिससे नई स्थितियां पैदा हुई हैं। इंग्लैण्ड जैसे देश में यह विधान 1957 में

पास हुआ था। हम इस विधान पर पिछले लगभग एक वर्ष से गौर कर रहे हैं और अब यह इस स्वरूप में सदन के सामने आया है। मैंने जानबूझकर अपनी टिप्पणियों को संक्षिप्त रखने का प्रयास किया है ताकि सदन ऊबने न लगे। निस्संदेह, जब खण्डवार चर्चा होगी तो अन्य चीजों पर रोशनी डाली जा सकेगी।

जेनेवा सम्मेलन में भी अनेक प्रस्ताव पारित किए जो इस विधेयक में नहीं हैं, लेकिन उनकी सूचना सरकारों को दे दी गई है क्योंकि ये कन्वेंशनों को कार्यान्वित करने का अनुरोध मात्र है। अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व मैं एक और मामले का उल्लेख करना चाहूंगा और वह है इस कन्वेंशन का अन्तिम अधिनियम। जैसाकि आप जानते हैं अन्तिम अधिनियम कन्वेंशन का अंग नहीं है, यह एक प्रकार की घोषणा है, जो हमारे जैसे देश के लिए काफी महत्व की बात है। इन मतभेदों को दूर किया गया है और परिणामस्वरूप उपसंधि का प्रारूप बना जिसपर 61 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए हैं। इनमें वह पूर्वी यूरोप के राष्ट्र भी सम्मिलित हैं जो आज दूसरे राष्ट्रों से अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सहयोग करना कठिन समझते हैं। यह न्याय और मानवीय मूल्यों की विजय है जो 1864 के प्रथम "जेनेवा सम्मेलन" से चली आ रही है जिसके द्वारा युद्ध की विभीषिका को समाप्त करने का विचार था। जब तक युद्ध की संभावनाएं पूरी तरह से समाप्त नही हो जाती, इसके दुष्प्रभाव को कम करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की आवश्यकता पर बल दिया जाना चाहिए। यदि सर्वनाश से बचना है तो जिस आदर्श की ओर सभी राष्ट्रों को बढ़ना चाहिए वह जेनेवा सम्मेलन के अंतिम अधिनियम के परिशिष्ट में दिए गए संकल्प में निहित है। उसमें विश्वास प्रकट किया गया है कि "विभिन्न राष्ट्रों के बीच सहयोग और आपसी समझौतों द्वारा मैत्रीपूर्ण ढंग से मतभेदों का निपटारा हो" तो "भविष्य में युद्ध विभीषिका से पीड़ित मानव के बचाव के लिए इन उपसंधियों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी", अर्थात, युद्ध विभीषिका से कोई पीड़ित नहीं होगा क्योंकि युद्ध ही नहीं होगा। अंतिम अधिनियम में इस बात पर भी बल दिया गया है कि अंततः सब कुछ मानवीय मूल्यों पर आधारित है।

यहां मैं अपने निजी अनुभव से एक बात बताना चाहूंगा। जब कोरिया में बातचीत में बाधा उत्पन्न हुई तो जेनेवा सम्मेलन के आधार पर ही हल ढूंढने का प्रयास किया गया। चीन उस समय इसके लिए इसलिए सहमत हो गया क्योंकि जेनेवा सम्मेलन मानवीय मूल्यों पर आधारित था और उनके द्वारा ही दो पक्षों के बीच कटु राजनैतिक मतभेद दूर किए जाने की संभावना थी।

हमें इससे भी प्रसन्नता होनी चाहिए कि मानव जाति ने इस बात को महसूस किया है कि मानवीय आधार पर ऐसे नियम निर्धारित किए जाने चाहिए जिनका राजनैतिक मतभेदों

और कटुता के बावजूद पालन किया जाना चाहिए। जबकि मेरे विचार में अणु युद्ध और हाईड्रोजन युद्ध में इन शर्तों की धज्जियां उड़ जाएंगी, लेकिन फिर भी यंत्रणा और निर्दयता में कुछ कमी आएगी, घायलों की मरहम पट्टी, उनके रिश्तेदारों को सूचना देना इत्यादि—सभी प्रावधान चौथे कन्वेंशन में है। मुझे विश्वास है कि यह कन्वेंशन इस मामले में मानव जाति द्वारा प्रगति की ओर अग्रसर होने का संकेत देता है।

इन प्रावधानों को लागू करने के लिए गम्भीर सुझाव भी दिए गए हैं जैसाकि यदि कुछ नहीं किया गया तो यह प्रावधान व्यर्थ हो जाएंगे अन्तर्राष्ट्रीय प्राधिकरण का गठन, कोई ऐसा देश—सुझाव दिया गया कि हमारा देश जो आने वाले लोगों को आश्रय दे सके। विनम्र भाव से मैं यहां कहना चाहूंगा कि ऐसे विचार आदर्शवादी लोगों द्वारा प्रकट किए जाते हैं और वह दुनिया और राष्ट्रसंघ की सच्चाईयों की पूरी उपेक्षा करते हैं। दुनिया में ऐसा कोई प्राधिकरण नहीं बनाया गया और राष्ट्र संघ कोई सुपर स्टेट नहीं है। यदि सदस्य राष्ट्रों के नेताओं की उपेक्षा की गई तो वह राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र के उद्देश्यों के विरुद्ध होगा। इसे अंतर्राष्ट्रीय नियमों को मंजूर करने का जो अधिकार मिला है वह सहमत निर्णयों, चाहे वे कुछ भी हों, के अनुसार कार्य करने वाले देश की सर्वोच्च संस्थाओं के सर्वोच्च विधानमंडलों के माध्यम से मिला है। सभी राष्ट्र स्वतंत्र हैं। जितना छोटा राष्ट्र होगा उतना ही वह अपना अधिकार छोड़ने में आनाकानी करेगा। वह अपना योगदान विश्व कानून और विश्व प्राधिकरण बनने पर दे सकते हैं। वह बदल सकते हैं, लेकिन राष्ट्रों को छोटे-छोटे मुद्दों पर सहमत करवाना बहुत कठिन होता है। यदि इस "कन्वेंशन" के इतिहास में जाना हो तो कह सकते हैं कि वह उन राष्ट्रों, जो कभी युद्ध नहीं करते और परिणामस्वरूप पीड़ित नहीं होते और उन राष्ट्रों को जो युद्ध के दुष्प्रभावों से पीड़ित होते हैं और पकड़े गए नागरिकों पर मुकदमे चलाने पर आपत्ति करते थे, के बीच समझौता कराने के लिए किया गया है। यह इन सबके बीच आपस में एक समझौता है। आज विश्व में किसी भी सुपर राष्ट्र के अधिपत्य की कल्पना करना कठिन है जिसकी कि इच्छा सर्वोपरि होगी। अंततः शक्ति पर ही सहमति निर्भर करती है। यदि सुपर राष्ट्र से कोई कानून बनकर अन्य राष्ट्रों को मानने अथवा पालन करने के लिए भेजा जाए और यदि उसका पालन न हो तो सुझाव दिया गया कि उनके विरूद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए। वह कार्रवाई क्या होनी चाहिए, इस बारे में अभी कोई प्रावधान नहीं किया गया है। इस संबंध में हम पिछले कानूनों से कहीं आगे बढ़ गए हैं और विदेशी नागरिक को दूसरे देश के कानूनों के अंतर्गत लाया गया है यदि वह वहां के कानूनों का उल्लंघन करता है। यह इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन सुझाव दिया गया है कि उस राष्ट्र को यह करने पर मजबूर किया जाना चाहिए और मजबूर करने की अंतिम स्थिति युद्ध है जिससे हम दूर रहने का प्रयास कर रहे हैं। यह प्रश्न इस बात से उत्पन्न होता है कि राष्ट्रसंघ सही

मायने में शक्तिशाली है। इसका स्वरूप बिल्कुल भिन्न है। वह न तो सुपर राष्ट्र है और न ही इसके पास कोई कार्यकारी शक्तियां हैं। राष्ट्रसंघ का न तो कोई विधानमंडल है और न ही उसकी महासभा संसद का कार्य करती है। वह तो केवल विश्व भर के राष्ट्रों को, जो विभिन्न मतों का प्रतिनिधित्व करते हैं, एक मंच पर ला देता है। राष्ट्रसंघ की प्रस्तावना में लिखा है "हम राष्ट्रसंप के लोग"। जहां तक उसकी कार्य प्रणाली का संबंध है वह विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से कार्य करता है, लेकिन उनमें जो संकल्प पारित किए जाते हैं वह स्पष्ट नहीं होते हैं। राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् के अतिरिक्त जितने भी अंग हैं वे संकल्प पारित करते समय कहते हैं "हम सिफारिश करते हैं।" यह स्पष्ट नहीं है कि सिफारिश किस से की जा रही है। वह केवल सिफारिश करके छोड़ देते हैं।

इसलिए, इस मामले में कुछ करने से पहले हमें उन राष्ट्रों पर निर्भर करना चाहिए जो "कन्वेंशनों" को मानते हैं और उनका पालन करते हैं। यह सभी कन्वेशनों पर लागू होता है। विश्व में कोई एक कानून नहीं है जो कन्वेंशनों का पालन करने वालों को मजबूर कर सके। अधिक से अधिक मैं यह कह सकता हूं कि यदि इसका पालन नहीं किया गया तो समझौता टूटने के परिणाम भुगतने पड़ेंगे। इस मामले में नैतिक परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं इसके नैतिक परिणाम हैं अन्य मामलों में अन्य परिणाम हो सकते हैं। जब कन्वेंशन का पालन होता है तो उसकी महिमा प्रायः समझौते के बराबर समझी जाती है हालांकि काफी कुछ अन्तर्राष्ट्रीय विधि पर भी निर्भर करता है।

उन राष्ट्रों का क्या होता है जो "कन्वेंशनों" पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं? कन्वेंशन केवल उन्हीं राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधता है जो उसे मानते हैं। जो नहीं मानते उनको उसका लाभ नहीं मिलता है। लेकिन जो मानते हैं उन पर नैतिक उत्तरदायित्व आ जाता है क्योंकि जैसे कहा गया है यह सारी प्रक्रिया मानवीय मूल्यों और अंतर्रात्मा की आवाज पर आधारित है।

3

भारत-पाकिस्तान संबंध*

देश के अधिकांश लोगों और इस सभा में व्यक्त की गई लगभग सर्वसम्मत भावनाओं से मैं सहमत हूँ, मैं केवल शिमला समझौते का ही समर्थन नहीं करता हूँ, बल्कि उन घटनाओं को भी भली-भांति समझता हूँ जिनके कारण वह बैठक या सम्मेलन बुलाया गया। मेरे विचार में इस बात के लिए सरकार की सराहना की जानी चाहिए कि वह उत्तेजक भाषणों अथवा समाचारपत्रों में प्रकाशित प्रतिकूल राय संबंधी समाचारों और सम्मेलन के संबंध में पाकिस्तान के अंदर पाकिस्तान के दृष्टिकोण से विचलित नहीं हुई, बल्कि उसने दृढ़ता से अपने प्रयासों को जारी रखा। जो देश युद्ध में विजयी होता है वह या तो अपनी विजय के परिणामों को स्थायी बना सकता है और दूसरे युद्ध की तैयारी में लग सकता है अथवा शांति स्थापना के लिए प्रयास कर सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक हमारा निरंतर लक्ष्य और नीति शांति स्थापना रही है।

केवल सरकार और मंत्री ही नहीं, बल्कि शिमला में इन सम्मेलनों में जो प्रशासनिक, राजनयिक तथा अन्य अधिकारी उपस्थित थे अथवा जो इस कार्य से संबंद्ध रहे, उन्होंने अंतिम परिणामों को प्राप्त करने के लिए काफी योगदान किया, परन्तु इस बारे में जनता के बीच बहुत ही कम चर्चा सुनाई देती है। वे हमारी ओर से धन्यवाद और प्रशंसा के पात्र हैं। सम्मेलनों में मन्त्रणा का अधिकतर कार्य सदैव अथवा अनिवार्यतः उस समय नहीं होता है, जबकि अंतिम दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए जाते हैं।

इस समय मैं यह कहना चाहूँगा कि जहां तक मेरा संबंध है मैं इस समझौते का और इस दस्तावेज का समर्थन करता हूँ जो हमारे सामने है। जनसंघ के अपने मित्रों की वजह से मैंने कल विदेश मंत्री का भाषण नहीं सुना। मैं समझता हूँ कि उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही, जो समझौते के इस दस्तावेज में न हो मेरे पास यह पत्र या समझौते का दस्तावेज है। संसद सदस्यों के रूप में और व्यक्तिगत रूप में हम किसी सीमा तक इस

---

* लोक सभा वाद-विवाद, 1 अगस्त, 1972

बात से प्रभावित होते हैं कि पहले क्या होता रहा है और घटनाओं के बाद सम्मेलन और समझौते के रूप में क्या प्राप्त हुआ है।

इस समझौते में द्विपक्षीय बातचीत और करारों के प्रति निश्चित वचनबद्धता अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती है। पिछले 10 या 15 वर्ष अथवा इससे भी अधिक अवधि के दौरान अन्य देशों ने पाकिस्तान और भारत के मामलों में हस्तक्षेप किया है और जब कभी हमारे बीच अथवा एशिया के अन्य संदर्भों में, उदाहरण के तौर पर जैसे चीन और भारत के बीच समझौता संभव था, उन्होंने ऐसा नहीं होने दिया अथवा शांतिपूर्ण समाधानों को निष्फल करने का प्रयास किया है इसलिए द्विपक्षीय संबंधों का पहलू हमारे मन में बार-बार उठता है। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभ से ही अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं में इस सिद्धांत और प्रक्रिया का पालन करना चाहा है। चाहे यह नेहरू लियाकत अली समझौता हो अथवा कश्मीर के संबंध में अन्य विभिन्न चर्चाएं अथवा वे सम्मेलन हों जिनका हमारे वर्तमान विदेश मंत्री ने उल्लेख किया है और उनके चाहे जो भी परिणाम निकले हों, हमने सदा एक दूसरे से चर्चा करने के प्रयास की प्रक्रिया का अनुसरण किया है और द्विपक्षीय वार्ता के उपाय को ही अपनाया है।

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी हम पर दबाव डाले जाने पर ही अथवा भारत-चीन समझौते के विभिन्न पहलुओं पर हमें झुकना पड़ा अथवा कोरिया के कैदियों को स्वदेश वापस भेजने की समस्या पर जब हमें झुकने के लिए मजबूर होना पड़ा अथवा मौन स्वीकृति देनी पड़ी, तीसरे पक्ष द्वारा हस्तक्षेप करने का विचार समाने आया, जबकि दोनों मामलों में तीसरा पक्ष स्वयं भारत था। कोरिया के बारे में बातचीत और भारत चीन के बीच बातचीत के संबंध में हमारी धारणा सदा यही थी कि जब दो पक्षों का आपस में टकराव हो तो इस समस्या को सबसे अच्छी तरह उनके बीच ही आपस में ही सुलझाया जाए। मैं यह कहना चाहता हूँ कि वर्तमान द्विपक्षीय दृष्टिकोण के बारे में कोई बात नई नहीं है सिवाय महत्वपूर्ण समझौते के, जिसका हम सभी समर्थन करते हैं। ऐसा नहीं है कि हम पूरी तरह दूसरे पक्षों की सहायता कभी भी उपयुक्त अवसरों पर स्वीकार ही नहीं करेंगे।

अतः इस समझौते का द्विपक्षीय पहलू एक निश्चित उपलब्धि है भले ही बाद में पाकिस्तान में दिए गए वक्तव्यों, विशेष रूप से स्वयं भुट्टो द्वारा दिए गए वक्तव्यों में इस समझौते के बारे में कुछ शर्तें लगाई गई हों, जैसा कि कुछ समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है। मैं जानबूझकर यह कह रहा हूँ कि इस आशय का समाचार समाचार पत्रों में

प्रकाशित हुआ है, क्योंकि हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते हैं कि समाचारपत्रों में जो कुछ प्रकाशित होता है वह वास्तव में सही ही होता है। समाचार पत्रों में बहुत सारी बातें आई हैं और आती रहती हैं। उदाहरण के तौर पर समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि श्री भुट्टो ने कहा है कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति का समर्थन करेंगे जो आत्मनिर्णय के पक्ष में हो चाहे वह विश्व के किसी भी भाग में हो। यदि इसका पालन किया जाए तो यह उस समझौते का उल्लंघन होगा और यह हमारे आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप होगा।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह सम्मेलन बुलाना और जिस प्रकार से यह किसी निष्कर्ष पर पहुँचा संबद्ध लोगों के लिए बधाई का विषय है और हमारे लिए संतोष की बात है। इससे शांति स्थापना हो सकती है और मुझे आशा है कि इससे शांति स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि प्रधानमंत्री मुझे गलत नहीं समझेंगे यदि मैं यह कहूँ कि सरकार के समर्थकों के अतिरंजित वक्तव्यों में सरकार को बहकावे में नहीं आना चाहिए, क्योंकि उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे अपनी बात बढ़ा-चढ़ा कर कहेंगे। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि शिमला में जिस समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं उससे दोनों देशों के बीच स्थाई शांति होगी। प्रधान मंत्री ने ठीक ही कहा है कि यह समझौता तो एक शुरुआत है। भारत और पाकिस्तान के बीच तब तक स्थाई शांति नहीं होगी जब तक विश्व में स्थाई शांति स्थापित न हो। वह एक अलग प्रश्न है। पर पूरी तरह अलग नहीं है। शिखर सम्मेलन और हाल ही में हुए समझौते से हमारे दो देशों के बीच तनाव कम होने में सहायता मिल सकती है और विश्व में भी स्थाई शांति की स्थापना में सहायता मिल सकती है।

अतः, जिस बात पर शिमला में समझौता हुआ है वह यह कि हम आपसी बातचीत से समस्याओं का समाधान करें। यद्यपि इस आशय की अफवाहें फैलाई गई हैं कि अन्य पक्ष हमारी सरकार पर दबाव डाल रहे हैं, परन्तु इन की ओर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि यह अनुमान गप्पे और कल्पना मात्र प्रतीत होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मामलों और चर्चाओं में भी एक या दूसरी ओर अथवा दोनों ओर से ऐसी बातें कही जाती हैं जिनका अर्थ ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। मैं श्री भुट्टो का बचाव करने अथवा उनके मस्तिष्क का विश्लेषण करने को तैयार नहीं हूँ। यह विदेश मंत्री का काम है और उन्हीं को उसके परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

मेरा अगला मुद्दा यह है कि पाकिस्तान इस बात के लिए सहमत हो गया है कि वह हमारे देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसका सख्ती से और व्यापक रूप से पालन करने से यह काफी सुधार की बात है; क्योंकि, देश के विभाजन के समय से

ही हमारे देश में घुसपैठ तथा अन्य कई तरीकों से पाकिस्तान की ओर से हमारे मामलों में निरंतर हस्तक्षेप हुआ है। अतः यह एक निश्चित उपलब्धि है। मैं आशा करता हूँ कि हम छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे और श्री भुट्टो तथा अन्य व्यक्तियों के परस्पर विरोधी वक्तव्यों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए जिससे हमारे बीच जो मूल समझौता हुआ है उस पर प्रतिकूल असर न पड़े।

मैं अब एक अन्य प्रश्न के संबंध में बात करना चाहता हूँ जिस पर यहां चर्चा की गई है। मैं संसद से पूर्व परामर्श करने के प्रश्न का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ, परन्तु हमारे द्वारा क्षेत्र वापस करने के प्रश्न का उल्लेख कर रहा हूँ। सभापति महोदय, हमारे देश के लिए वह दिन एक बुरा दिन होगा, जब हम यह कहें कि "जो हम जीत जाते हैं उसे अपने कब्जे में ही रखेंगे " विजित क्षेत्र अथवा दूसरे क्षेत्र को अपने देश के क्षेत्र में शामिल करना असंगत है; क्योंकि यदि हम ऐसा करना भी चाहें तो विश्व समुदाय ऐसा नहीं करने देगा। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारा देश साम्राज्यवादी देश बन जाएगा। व्यक्तिगत रूप से मुझे उन व्यापारिक घुसपैठ और समझौतों के बारे में भी शंका हो रही है जो इस समय हो रहे हैं और जिनसे खतरा है। यदि हम सावधान नहीं रहेंगे, तो हम भी एक अन्य एंग्लो-ईरानियन तेल कंपनी अथवा इसी प्रकार की कंपनी की तरह व्यवहार करने लगेंगे।

फिर भी, हम इस बात पर स्थिर नहीं रह सकते हैं कि जो कुछ हमने जीत लिया है वह हमें अपने कब्जे में रखना है। हमने सैनिक कार्रवाई करने पर युद्ध के दौरान कुछ क्षेत्र अपने कब्जे में कर लिए। क्या यह सही सैन्य कूटनीति थी या नहीं, इस बारे में निर्णय करना सरकार और उसके असैनिक और सैनिक सलाहकारों का कार्य है और परिस्थिति के अनुसार उसे निर्धारित करना उनका कार्य है। हम पाकिस्तान के क्षेत्र के अंदर चले गए ताकि हमारी अपनी सेना पर दबाव कम हो जाए और उनकी सेना व्यस्त रहे। हम इस विचार से पाकिस्तान के क्षेत्र में नहीं गए कि उनके नगर और नागरिकों को अपने अधीन करें और उन्हें अपने नगर और नागरिक बनाएं। मेरे विचार से यह कहना ठीक होगा कि अन्य लोगों की समस्याओं को अपनाने से पहले ही हमारे पास अपनी खुद की ही पर्याप्त समस्याएं हैं।

इतना कहने के पश्चात्, नई स्थिति में से एक दो सैनिक पहलू हमारे समाने आते हैं जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं अथवा अपने लिए खतरा उत्पन्न करके ही इसकी उपेक्षा कर सकते हैं। निश्चय ही किसी सार्वजनिक भाषण में यह कहना बहुत ही सहज है कि हम किसी की भी चुनौती स्वीकार कर सकते हैं अथवा हम सभी प्रकार की संभावनाओं के लिए तैयार हैं जहां हम सभी बांगलादेश की स्वतंत्रता से अत्यंत प्रसन्न और गौरवान्वित हैं और उनकी राष्ट्रीय आकांक्षाएं, उनके प्रयासों और हमारी सहायता से

पूरी हो गई, परन्तु इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि यह एक कठोर सत्य है कि इससे पाकिस्तान एक नाजुक मोर्चे से मुक्त हो गया है। उन्हें अब एक ही मोर्चे की सुरक्षा करनी है। जो शक्ति उन्हें पूर्व में औपनिवेशिक कार्यों के लिए उपलब्ध थी, अब वह अन्य प्रयोजनों के लिए उपलब्ध है।

इसका दूसरा पहलू यह है कि पाकिस्तान हमारे देश जैसा नहीं है जो सैनिक गठबंधनों से पूरी तरह मुक्त है। वह अभी भी सीटो और सेंटो का सदस्य है और उन्हें केवल चीन से ही नहीं, बल्कि अन्य देशों से भी शस्त्र तथा साज-सामान की सप्लाई मिल रही है। इन तथ्यों की जानकारी सरकार को भी है और हमें इस संबंध में जरूरत से अधिक भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हम इस संबंध में क्या कर सकते हैं या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार दिन प्रतिदिन क्या निर्णय लेती है।

हमारे लिए इस बात को स्मरण रखना भी महत्वपूर्ण है कि पिछले कुछ महीनों अथवा वर्षों में हमारे समुद्री क्षेत्र में और हिन्द चीन समुद्री क्षेत्र में अमरीकी नौ सेना का कुटिलतापूर्ण दुःसाहस ऐसा है जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। इस समय मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि क्या हिन्द चीन क्षेत्र में बम वर्षा कल समाप्त होगी या परसों। किन्तु हमें इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि यदि ये ही शक्तियां पाकिस्तान की रक्षात्मक बम वर्षा में सहायता करती है, तो हम पाकिस्तान के साथ केवल भूमि पर युद्ध करने तक सीमित रहेंगे, तत्पश्चात् अन्य परिणाम भी सामने आते हैं। किन्तु इस बात को नहीं भुलाया जाना चाहिए कि यदि यही शक्तियां पाकिस्तान की रक्षात्मक बम वर्षा की सहायता करती, फिर पाकिस्तान के साथ हमारी लड़ाई केवल भूमि पर ही होती और फिर अन्य परिणाम भी सामने आते। सरकार को अपनी शस्त्र क्षमता के संबंध में और इनको अपने लाभ के लिए प्रयोग करने के संबंध में कोई शंका नहीं है। फिर भी, इस समय हमारे पास नौसेना के इतने पोत नहीं हैं जो हमारी विस्तृत समुद्री सीमा की प्रभावी ढंग से निगरानी कर सकें—मैं यह कोई गोपनीय बात नहीं कह रहा हूँ। मेरा निवेदन यह है कि हमें अपने समुद्री क्षेत्र की निगरानी करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह मामला युद्ध रोकने के लिए भी तात्कालिक और अविलम्बनीय महत्व का है। इस समय की अपरिहार्य आवश्यकताओं की माँग के अनुरूप मात्रा में हम समुद्री जल के अंदर रक्षा व्यवस्था के पर्याप्त विकास में और अधिक विलम्ब नहीं कर सकते हैं।

अब हम समझौते के उस भाग के संबंध में चर्चा करते हैं जिसका उल्लेख शब्दों में नहीं किया गया है। प्रधानमंत्री पर यह आरोप लगाया गया है या इस बात के लिए उनकी सराहना की गई है अथवा कुछ इस प्रकार के वक्तव्य उन्होंने दिए हैं कि वह शिमला

"एकमुश्त सौदा" के लिए जा रही है; इसका अर्थ जो कुछ भी हो अथवा जो कुछ उन्होंने कहा, बात यह है कि मूलभूत समस्याओं को सुलझाया जाना चाहिए। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने सरकार द्वारा संसद में दिए गए इस प्रकार का कोई वक्तव्य नहीं पढ़ा है। राजनेता भाषण देते हैं; इनमें से कुछ समाचारपत्रों में प्रकाशित किए जाते हैं और कुछ अंशों का लोप किया जाता है। समाचारपत्रों में प्रकाशित किए गए भाषणों पर हम भरोसा नहीं कर सकते हैं। मैंने ऐसा कोई वक्तव्य नहीं देखा है जिसमें यह कहा गया हो कि शिमला सम्मेलन इस विचार पर आधारित था कि सभी समस्याओं का एकमुश्त समाधान होना चाहिए।

पहले, हम यह देखें कि एकमुश्त समझौता क्या है "पैकेज" क्या है? पैकेज अखंडित वस्तु या पैकिट नहीं है। पैकेज संघटकों का एक सम्मिश्रण है, अतः सम्मिश्रण तैयार करने के लिए संघटकों को इकट्ठा किया जाना चाहिए। अतः एकमुश्त करार होने या न होने का इस मामले में कोई अर्थ ही नहीं है। जहां तक मूलभूत प्रश्नों को सुलझाने का संबंध है, जिस किसी व्यक्ति ने इसका उपयोग किया है उसके प्रति बिना किसी निरादर की भावना से, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि यदि सभी समस्याएं सुलझा ली जाती हैं तो शिखर सम्मेलन की आवश्यकता ही क्या है? एक पोस्टकार्ड में लिखकर भेजें कि "मूल प्रश्नों का हल निकल गया है और अब दोस्ती का हाथ बढ़ाइये।" अगर मूल प्रश्नों को हल करना है तो हमें सादे परन्तु महत्वपूर्ण मसलों से शुरुआत करनी पड़ेगी। अगर इस समझौते के द्वारा ये प्रश्न हल नहीं होते हैं तो युद्ध की स्थिति बनी रहेगी और उसका भय लगातार सताता रहेगा हालांकि वास्तविक युद्ध नहीं हो रहा है। हम 1965 के युद्ध की स्थिति में होते जब युद्धविराम का समझौता तो हुआ पर युद्ध रुका नहीं।

इसके अतिरिक्त मैं यह भी कहूंगा कि इस युद्ध में हमने जिन क्षेत्रों पर कब्जा किया उन्हें वापिस करना एक राष्ट्रीय कर्तव्य और अंतर्राष्ट्रीय दायित्व है। यदि हम किसी विजित क्षेत्र को अपने कब्जे में रखते हैं तो हम विजेता शक्ति बन जाएंगे और हम उन्हीं गलतियों को दोहराएंगे जो हमारे पूर्वशासकों ने की थी। अतः यह स्वागतयोग्य है जो कि अपेक्षित था कि हमने बिना किसी दबाव के कहा कि "जो आपका है उसे आप ले लें।" परन्तु इसका अर्थ यह भी है कि दूसरे लोग भी उस सद्भावना का सम्मान करें।

तिथवाल में कम से कम दो चौकियाँ हैं। तिथवाल हमारे लिए एक ऐतिहासिक स्थान है। यह वह स्थान है जहां पर पाकिस्तान की फौज को सबक सिखाया गया और वह युद्ध हार गई जिसके बाद 1948 में युद्ध-विराम हुआ।

यह हमें उस मसले पर लाता है जिसके संबंध में कोई फैसला नहीं लिया गया। यह अच्छी बात है कि जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं लिया गया क्योंकि अगर उस प्रकार की

शुरुआत की जाती तो शिमला समझौता अगले 2 वर्ष या 20 वर्ष के लिए चल सकता था या असफल हो सकता था। समझौते में लिखा है कि "जिन मूल मसलों ने पिछले 25 वर्षों में दोनों देशों के बीच संबंधों को बिगाड़ा है उन्हें शांतिपूर्ण ढंग से हल किया जाएगा।" इस अभिव्यक्ति का इस्तेमाल किया गया। उसके बाद कश्मीर के मसले का उल्लेख किया गया जिसके कारण 25 साल से भारत और पाकिस्तान के संबंध तनावपूर्ण हैं। कहा गया है: "17 दिसम्बर, 1971 के युद्ध विराम के परिणामस्वरूप जम्मू-कश्मीर में जो नियंत्रण रेखा बनी उसका दोनों पक्षों की मान्य स्थिति के प्रति पूर्वाग्रह के बिना माना जाना चाहिए।

जहां तक वर्तमान समझौते का संबंध है—यह किसी का अनादर नहीं है—यह समझौता मतभेदों को दूर करने के लिए परस्पर बातचीत और मामले के स्थगन के लिए है ताकि उसे शांतिपूर्ण ढंग से द्विपक्षीय रूप में, मूल सिद्धांतों का आदर करते हुए सुलझाया जा सके। अब यह आवश्यक है कि हम समझ लें कि "सुलझी स्थिति" का क्या अर्थ है। मैं इस समस्या से भलीभांति परिचित हूं। मुझे ऐसी कोई स्थिति, वक्तव्य या संकल्प याद नहीं जिसमें भारत सरकार ने जम्मू और कश्मीर के किसी भाग से निकलने के लिए सहमति प्रकट की हो। 1948 और 1952 के बीच हुई चर्चाओं में भी ऐसी कोई बात नहीं उठी। हमने कहा कि युद्ध-विराम रेखा से हम अपनी फौज को तब हटाएंगे जब पाकिस्तान अपनी फौज को भारतीय क्षेत्र से हटा लेगा और कब्जा किए हुए क्षेत्र से हट जाएगा। इसके अतिरिक्त हमने कभी भी और कहीं भी इस मामले में यह नहीं कहा कि हम वहां जायेंगे अथवा वहां से हट जायेंगे। कश्मीर के संबंध में स्थिति यह है। हम केवल कानूनी आधार पर वहां मौजूद नहीं हैं बल्कि सभी अन्य कारणों से कश्मीर के तत्कालीन महाराजा द्वारा सहमत होने पर राज्य का कानूनी तौर पर भारत में विलय करना जैसे अन्य अनेक अधिकारों के आधार पर है। कश्मीर का वह क्षेत्र जो भारत की प्रभुसत्ता का भाग है वह वही क्षेत्र है जो 1947 में कश्मीर के महाराजा की प्रभुसत्ता तथा कब्जे में था। इसका उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि हर कोई यह कह सकता है कि कश्मीर हमारे सीमाक्षेत्र में है और सीमा क्षेत्र के प्रश्न को अलग रखा जाना चाहिए। युद्ध-विराम रेखा के विषय में और उसके वास्तविक सीमा होने के बारे में अनेक भ्रांतियां हैं। यह मामला कांग्रेस पार्टी के सचिव के कल के भाषण से स्पष्ट हो गया है। इसमें जम्मू और कश्मीर के वे सब क्षेत्र शामिल हैं जो अब पाकिस्तान के गैर-कानूनी कब्जे में हैं और 2000 वर्ग मील का वह क्षेत्र जो पाकिस्तान ने चीन को अस्थायी तौर पर दे रखा है।

इस मामले में हमारे यह रुख अपनाने का क्या परिणाम होगा? इस मामले पर मैंने सार्वजनिक तौर पर और व्यक्तिगत तौर पर मत व्यक्त किया है। यह सोचना बेकार है कि सरकार ने इस मामले में हमारे सर्वविदित रुख के विरुद्ध कोई कार्य किया है। इस देश

की कोई भी सरकार चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि देश की अखण्डता की भावनाओं की जड़ें इतनी गहरी हैं कि कोई भी सरकार चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर सकती। कश्मीर के भीतर कोई भी विभाजन रेखा खीचने की कोशिश, जो उसका विभाजन करे भारत की जनता घोर विरोध करेगी चाहे वह सरकार कितनी भी लोकप्रिय क्यों न हो। यह हो सकता है कि अन्य कोई रास्ता उपलब्ध हो तो हम उनके कब्जे में क्षेत्र को हासिल करने के लिए युद्ध का रास्ता न अपनायें।

इससे हम वास्तविक स्थिति पर पहुंचते हैं। मैंने विदेश मंत्री को हमेशा वास्तविकता के बारे में बात करते हुए सुना है। कल मैंने अपने मार्कसिस्ट पार्टी के मित्र को वास्तविकता के बारे में कहते हुए सुना। वास्तविकता स्थिर नहीं रहती, उसमें बदलाव आता है। मैं एक छोटा सा उदाहरण देता हूं। इस देश में बात कही जाती है कि अतीत को भूलकर हमें 1948 की युद्ध-विराम रेखा को मान्यता देनी चाहिए। अगर हमने यह किया होता तो आज हमें नियंत्रण रेखा के मामले में समझौता न करना पड़ता। हमें उत्तर में अपने कब्जे में आये हुए क्षेत्रों से हमें उसी प्रकार निकलना पड़ता जिस प्रकार 5000 वर्ग मील के क्षेत्र से निकल कर उसे सौंप रहे हैं। अगर हमने पुरानी युद्ध विराम रेखा को मान्यता दी होती तो कश्मीर के पुनः प्राप्त हिस्से को हमें लौटाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि अपने क्षेत्रों की राजनैतिक और वैधानिक प्रभुसत्ता का हम कभी भी समर्पण नहीं करेंगे। यह पृथक होने जैसा कार्य होगा। पृथक होना समर्पण करने के समान है और हम पराजित देश नहीं हैं। परन्तु विश्व शांति के लिए एक देश अपनी प्रभुसत्ता का पूरी तरह या एक अंश समर्पण कर सकता है।

** ** **

हमारा मत हमेशा यह रहा है कि हम कश्मीर में साधिकार हैं जिस तरह अन्य राज्यों का विलय हुआ। जम्मू और कश्मीर का भारत में विलय हुआ और 25 वर्षों से हमारे स्वामित्व में होने से इस की पुष्टि होती है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में ऐसा कुछ नही है और कहीं भी आंशिक विलय, अल्पकालिक विलय या समय-समय पर पुनरीक्षण किए जाने वाले विलय का उल्लेख नही है। एक बार विलय हो जाने पर मामला समाप्त हो जाता है। गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबैटन ने दस्तावेज पर हस्ताक्षर करते हुए लिखा "हमें स्वीकार है और मामला वहीं समाप्त हो गया। अर्पण किए बगैर उसे लौटाया नहीं जा सकता। यह तो सभी को स्पष्ट होगा।

जिन क्षेत्रों में पाकिस्तान का कब्जा है वहां उसका क्या अधिकार है? एक तरफ तो वह संयुक्त राष्ट्र संघ को धोखा दे रहा है और दूसरी तरफ अपनी हमले की कार्यवाही से धोखा दे रहा है। उसने क्षेत्र को गैर-कानूनी ढंग से हथिया लिया है। उसी प्रकार राज्य के

कुछ हिस्सों को उसने गैर-कानूनी रूप से चीन को दे दिया है। उन्हें हमला करने का अधिकार है और हमें कानूनी कब्जा करने का अधिकार है।

यह बिल्कुल उचित है तथा हमारे लिए सही है कि हम पाकिस्तान के क्षेत्रों को उसे वापस करें तथा पाकिस्तान को भी हमारे क्षेत्र जिन पर उसने गैर-कानूनी तरीके से कब्जा कर रखा है, वापस करना चाहिए। राजनैतिक आवश्यकताओं के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि इसमें कुछ समय लगे तथा हम इसमें शांतिपूर्वक तरीके से कुछ बदलाव लाना चाहेंगे। पाकिस्तान से हमारी इस मांग का कि वह हमले से दूर रहे अर्थ यही है।

दूसरी बात यह याद रखने की है कि परिवर्तन होता है और हम अपने अधिकारों को नहीं खो सकते। तीन वर्ष पहले अगर कोई कहता कि बंगलादेश एक स्वतंत्र देश बनेगा तो उसे पागल समझा जाता या पाकिस्तान का आलोचक तथा उसका विघटन करने वाला समझा जाता।

स्वतंत्रता आन्दोलन पाकिस्तान और विश्व के दूसरे हिस्सों में भी होते हैं और हमें यह स्पष्ट करना है कि पाकिस्तान ने हमारे क्षेत्र पर अनधिकृत कब्जा किया हुआ है।

जहां तक कश्मीर का प्रश्न है, वह अपनी जगह है और पाकिस्तान और हमारे देश के बीच बातचीत हुई है कि कैसे एक तरफ विवाद की स्थिति है और दूसरी तरफ घुसपैठ हो रही है।

आखिर में, एक सरकार समर्पण या बलिदान कर सकती है अगर उसके पक्ष में कुछ हो। अगर युद्ध-विराम रेखा को 20 मील आगे या पीछे बनाया जाता तो सेना की तैयारियां, घुसपैठ और प्रतिरोध जैसी समस्याएं बनी रहती। अंतर केवल इतना होता कि स्थान दूसरा होता। जब तक युद्ध-विराम रेखा भारतीय क्षेत्र में है वह अंतर्राष्ट्रीय सीमा नहीं हो सकती। पिछले 25 वर्षों की हमारी समस्याएं नहीं सुलझेंगी। हो सकता है पाकिस्तान में और विश्व के अन्य हिस्सों में परिवर्तन हुआ है, परन्तु इस समय भारत उनसे आगे नहीं है।

4

भारत-रूस संधि*

उपाध्यक्ष महोदय, सदन के सामने भारत सरकार और सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ की सरकार के मध्य हुई संधि का पाठ है। माननीय विदेश मंत्री का वक्तव्य भी सभा के समक्ष है जिसका उद्देश्य संसद को तथा मेरे विचार में आम जनता को इससे अवगत कराना है।

मैं माननीय विदेश मंत्री को गंभीरता से एक बात बताना चाहता हूं। आज सुबह अखबारों की सुर्खियों को पढ़कर जितना मैं बेचैन हुआ उतने वे भी जरूर हुए होंगे। यह संधि शांति, मैत्री और सहयोग की संधि है। वस्तुतः, हमारे सभी राष्ट्रीय अखबारों ने वे विदेश मंत्रालय से प्रेरणा लेना पसंद नहीं करते भारत और सोवियत संघ के बीच रक्षा समझौते के समाचार को 5 स्तम्भों की सुर्खियों में छापा है। इस पर भारत सरकार और सोवियत संघ से ज्यादा किसी दूसरे को दुख नहीं हुआ होगा। हालांकि, इस वक्त भी इस मसले पर सार्वजनिक शिक्षा अपर्याप्त साबित हुई है तभी तो राष्ट्रीय अखबारों ने हमारे और सोवियत संघ के बीच हुई संधि को सुरक्षा समझौता कहा है। इससे "नाटो" "सियटो" का औचित्य सिद्ध होता है और हमारी विदेश नीति का आधार खत्म हो जाता है।

आप कुछ भी कहें पर विदेश मंत्री जी ने तथा अन्य लोगों ने ठीक ही कहा है कि यह भारत के इतिहास में तथा भारत की विदेश नीति के विकास में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह उपलब्धि इन अर्थों में है कि इससे पता चलता है कि हम किस नीति का पालन कर रहे हैं। उपलब्धि कोई अनायास ही नहीं हो जाती। उपलब्धि के पीछे काफी लम्बे समय का यहां तक कि 20-30 वर्षों का प्रयास होता है और इसके लिए तो हम स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले से प्रयास करते आ रहे हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने, जो कि उस समय भारतवर्ष की जनता का

* लोक सभा वाद-विवाद, 10 अगस्त, 1971

प्रतिनिधित्व कर रहे थे जार साम्राज्य के पतन का तथा सोवियत संकल्प का, जिसमें साम्राज्यवाद की निंदा और मानव की समानता तथा राष्ट्रों की समानता की उद्घोषणा की गई थी स्वागत किया उसी समय से स्वतंत्रता आंदोलन की सोवियत संघ के प्रति कोई निष्ठा नहीं थी, जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है, बल्कि वहां की घटनाओं का आदर करना और समझना था।

कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष, पं० जवाहरलाल नेहरू ने काफी समय तक सोवियत संघ की भूमिका तथा विश्व इतिहास पर उसके असर पर चर्चा की। मैं यह सब अपनी इतिहास की जानकारी को ताजा करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। कल जो है उसके बारे में कुछ हुआ यह कहना कि यह हमारी नीति से हटकर एक नई घटना है और यह सवाल उठाना कि हम गुट निरपेक्ष रहेंगे या नहीं मेरे विचार से हमारी अधूरी जानकारी प्रदर्शित करता है।

मेरा अनुरोध है कि इसको समझने का हर प्रयास किया जाना चाहिए। मेरा विश्वास है कि माननीय विदेश मंत्री व उसके अधिकारीगण अगर इस संधि को ठीक से समझ पाएं, तो उनको आम जनता को इस विषय पर शिक्षित करने में आसानी होगी।

यह संधि शांति, मैत्री तथा सहयोग की संधि है। मैत्री एक द्विपक्षीय मामला है। इस संदर्भ में यह संधि भी द्विपक्षीय है। शांति एक अंतर्राष्ट्रीय मामला है और इसका संबंध अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से है। इसलिए मुझे उनके कल के भाषण के पहले दो पैराग्राफों में क्षेत्रों, हमारे क्षेत्र के उल्लेख का दुख हुआ क्योंकि इससे ऐसा लगता है कि हम "सियटो" के समानांतर दूसरा संगठन बनाने जा रहे हैं: कहने का मतलब यह है कि श्री किसींजर की रहस्यपूर्ण यात्रा के तुरंत बाद हमने उस देश में अपने नए राजदूत को भेज कर हमारे संबंधों के बारे में बातचीत करने का एक असाधारण कदम उठाया। अब यह आवश्यक हो सकता है परन्तु इस मामले में नाटकीय वातावरण बनाने से संधि का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मैं इस उपलब्धि को कोई कम करके नहीं आंक रहा हूँ न ही सब कुछ केवल एक दिन में संभव हो पाया है। इस बारे में बातचीत पिछले दो वर्ष से चल रही थी और इसकी जानकारी माननीय विदेश मंत्री जी के अतिरिक्त और किसी को नहीं है। भारत और सोवियत संघ के बीच ये संबंध हमारे आजादी के पहले और बाद के रवैये से तथा भारत सरकार की विश्व शांति के मामले में निभाई गई भूमिका से चाहे वो कोरिया का मामला हो, भारत-चीन, साइप्रस मध्यपूर्व; अथवा विश्व में कहीं का भी मामला हो, संभव हो पाए हैं। भारत ने संपूर्ण विश्व को यह दिखा दिया है कि सोवियत संघ समेत सभी देशों में शांति के लिए उसे एक अहम भूमिका अदा करनी है। इस अवधि के दौरान भारत और सोवियत संघ के बीच काफी अच्छे सहयोग का आधार यह नहीं रहा है कि

दोनों देशों ने एक दूसरे की हाँ में हाँ मिलाई है, मैं इस बात का साक्षी हूँ। हमारे संबंधों का आधार समानता रहा है। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में हम कभी भी सोवियत संघ पर आश्रित नहीं रहे हैं। यह निर्देश नहीं दिया है कि हमें कैसे और किसको अपना वोट देना चाहिए और कोरिया के मामले पर और कोरिया के संकल्प पर बहस के दौरान सोवियत प्रतिनिधि ने कहा था कि हम तो इस देश की शांति और अपने विचारों को दृष्टिगत रखकर काम करते हैं और हमने वैसा ही किया। हमने अपनी मर्जी से मत डाला। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे मामले में कभी किसी ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया और न ही हमें प्रभावित करने का प्रयास किया, जैसा कि हम करने की कोशिश करते हैं। अगर हम अपने आपको बाहरी दुनिया के विचारों से अलग-थलग रखते हैं तो हम दूसरों की विचारधारा से अपने को अछूता पाएंगे और अपनी विचारधारा से उनको अवगत भी नहीं करा पाएँगे, और इस तरह से राजनय भी चल नहीं सकेगी। इसलिए राजनय के सिद्धांत के अनुसार हमको यह बात मानकर चलना चाहिए कि दूसरों के पास भी कुछ न कुछ कहने के लिए जरूर है।

मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं इसका स्वागत करता हूँ, पर किसिन्जर की यात्रा तथा निक्सन की आगामी यात्रा पर संसद में व्यक्त किए विचारों से मुख्य मुद्दे की महत्ता कम नहीं होनी चाहिए। और न ही इसका महत्व मेरे दोस्त श्री आर० के० सिंहा द्वारा उठाए गए 0.2 करोड़ तथा 0.5 करोड़ के मुद्दे से कम होना चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि आप कैसे लोगों की गिनती करते हैं। श्री बाजपेयी जी ने कहा वहाँ 10,000 लोग थे और श्री आर० के० सिंहा कहेंगे वहां 0.3 करोड़ लोग थे। मैं कहता हूँ कि मुझे नहीं मालूम क्योंकि मैं वहां मौजूद नहीं था, वगैरह-वगैरह। मैं पूरे आदर के साथ कहता हूँ कि इतिहास में ऐसे कई अवसर आए हैं जब बड़े-बड़े प्रदर्शन किए गए हैं तथा उनके बाद कुछ ऐसी घटनाएं हुई जो कि इन प्रदर्शनों के नेताओं के कारण नहीं हुई। फारमोसा रवाना होने से पहले चाँग-काई शेक ने 0.6 करोड़ लोगों द्वारा जबरदस्त प्रदर्शन कराया। इसी तरह का अनुभव रूस के ज़ार का रहा। डुमा में 1905 से 1914-15 तक की घटनाओं के दौरान डुमा में ज़ार को भारी समर्थन मिला। और उस समय यह कहा जाता था कि लोग ज़ार के भारी समर्थक हैं। निश्चय ही लोग उसके पीछे थे और काफी समय तक उसका समर्थन करते रहे। इसलिए यह काफी दुखदपूर्ण है कि विदेश मंत्री जी की टीम के सदस्यों का दायित्व सत्ता में होने की वजह से बाकी सदस्यों से और हम लोगों से जो पीछे रहते हैं ज्यादा है। इस तरह के वक्तव्य देना कि चूंकि इस संधि को भारी समर्थन प्राप्त है इसलिए यह संधि महत्वपूर्ण है, वस्तुतः इसकी महत्ता को कम करना है। इस विषय पर दलों के आधार पर तथा गैर-जिम्मेदाराना तरीके से चर्चा करना ठीक नहीं है क्योंकि यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है।

महोदय, आम सहमति के बिना विदेश नीति संसदीय परम्परा में टिक नहीं सकती है—आम सहमति, जैसी कि श्री बाजपेयी ने, जो कि हमेशा हमारा विरोध करने वाले हैं, जाहिर की है। विदेश नीति पर हमेशा इस प्रकार की आम सहमति होनी चाहिए। विभिन्न दृष्टिकोण वाले विभिन्न मुद्दों की तरह नहीं।

विगत में इस बात का कोई सबूत नहीं है कि तथाकथित गुट निरपेक्ष नीति के कारण तो विश्व में हमारा न किसी से कोई सामंजस्य है और न किसी से मित्रता है। इसके विपरीत, शांति स्थापित करने के आंदोलन को प्रगति प्रदान करने में हमारा काफी योगदान है।

यह बात मुझे उस पैराग्राफ का ध्यान दिलाती है जिसमें ऐसे ही मामलों पर प्रकाश डाला गया है। यह कहना मित्रता और सहयोग की सम्पुष्टि करना मात्र नहीं है कि "दोनों देश निःशस्त्रीकरण, शस्त्र नियंत्रण आदि की भावना के विस्तार के लिए वचनबद्ध हैं।" मेरा विचार है कि जिन मुद्दों के लिए भारत ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं वह इस बात का सूचक है कि वह अपने आपको उस स्थिति से बचाने में सफल हुआ है जिसे न्यूनाधिक रूप से अकेला पड़ जाना कहा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि पिछले 6-7 वर्षों के दौरान निःशस्त्रीकरण के प्रसार से संबंधित चर्चाओं में हमारा योगदान न के बराबर रहा है। संभवतः यह इस बात का भी सूचक है कि वैज्ञानिक विकास के संबंध में, विशेषतः इलेक्ट्रानिक्स संचार के संबंध में हमारे ऊपर विश्व के किसी भी देश द्वारा रोक नहीं लगाई जा सकती। मैं इस विषय के विस्तार में नहीं जाना चाहता। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि संचार व्यवस्था के लिए अंतरिक्ष में अनुसन्धान कार्यों के संदर्भ में यह पैरा में जो सहयोग तथा प्रौद्योगिकी विकास संबंधी मामलों से संबद्ध है, काफी सार है। हमें यह भी बताया गया है कि किसी ऐसे देश को जो हमारा विरोधी हो, सहायता देना एक प्रतिकूल कार्य होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि इसका क्या प्रभाव होगा; बहुत से देश किसी न किसी समय विरोधी होते हैं। किन्तु हममें से प्रत्येक देश इस बात के लिए वचनबद्ध हैं कि वह किसी भी ऐसे देश के साथ संपर्क नहीं रखेगा जो हमें युद्ध की चेतावनी दे। पहली बार ऐसा हुआ है कि किसी दस्तावेज में युद्ध की अपेक्षा युद्ध की धमकी के संबंध में समझौता हुआ है।

पिछले पंद्रह वर्षों से संयुक्त राष्ट्र संघ "आक्रमण" शब्द को परिभाषित करने का यत्न कर रहा है किन्तु इसमें सफल नहीं हुआ है; इसके बावजूद जब किसी को इसका सामना करना पड़ता है तो वह निश्चित रूप से इसका अर्थ समझ जाता है। किन्तु यहां पर हम "आक्रमण" शब्द के स्थान पर "आक्रमण की चेतावनी" शब्द का प्रयोग करके कुछ आगे बढ़ गए हैं। श्री के० मनोहरण तथा श्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा कुछ संदेह

व्यक्त किए गए हैं — किन्तु उनका उत्तर देना मेरा काम नहीं है — इस बात का उत्तर सरकार देगी कि क्या भारत की राज्यक्षेत्रीय अखण्डता को बनाए रखने के विषय में किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है या नहीं। सोवियत रूस ने केवल मास्को में ही नहीं बल्कि अन्य अनेक अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अनेक बार इस बात पर जोर दिया है कि वह भारत की सीमाओं का सम्मान करता है। जहां तक उस देश का संबंध है उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि कश्मीर किसकी सीमा में आता है। इसका अभिप्राय यह है कि उनके विचारानुसार यह एक सुलझाया जा चुका मामला है तथा वे इस मामले में नहीं पड़ना चाहते। दुर्भाग्य से, कारण चाहे कोई भी रहे हों, किन्तु हमारे आधे सीमावर्ती क्षेत्र पर विदेशी कब्जा है और हम उसको खाली करवाने में सफल नहीं हुए हैं। यह एक अलग मामला है। अतः उस दृष्टि से इस मसले को एक ओर रख दिया जाना चाहिए।

तत्पश्चात्, मैं चाहूँगा कि माननीय विदेश मंत्री उन विभिन्न अनुच्छेदों पर ध्यान दें जो हमारे समक्ष हैं तथा इस बात का ध्यान रखें कि उनका भी वही हाल न हो जो अर्थव्यवस्था संबंधी तथा सांस्कृतिक संधियों के कुछ उपबंधों का हुआ, तथा चर्चाओं और निःशस्त्रीकरण की नीतियों के प्रसार व अंतरिक्ष अनुसन्धान में सहयोग को इस प्रकार से गति प्रदान की जा सके कि यह किसी अन्य दिशा में परिवर्तित न हो जाए। मैं इस बात से कदापि संतुष्ट नहीं हूँ कि संयुक्त राष्ट्र संघ की योजना को लागू किया जा रहा है। यह विश्व का वह भाग है जहाँ काफी प्रगति हुई है और हमें उसमें अवश्य सम्मिलित होना चाहिए।

इससे परमाणु प्रसार पर रोक की संधि के पुनरावलोकन का मसला भी उत्पन्न होता है। हमारे लिए इस संधि के विषय में तर्कसंगत होना ही काफी नहीं है। इस बात पर सदन मेरे साथ सहमत नहीं है कि परमाणु प्रसार पर रोक की संधि पर यदि हस्ताक्षर भी हो जाते हैं, तो यह निःशस्त्रीकरण की ओर अगला कदम होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि परमाणु शस्त्रों को सुगमतापूर्वक उपलब्ध करवा दिया जाए तथा अराजकतावादी तत्वों सहित सबको उन्हें प्राप्त करने की अनुमति दे दी जाए तो विश्व अत्यंत कठिन स्थिति में फंस जाएगा। इसलिए, वह अपने आप में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रगति है। इसके बावजूद इसको वह रूप नहीं दिया जा रहा है जिसकी हम कामना करते हैं। इसके लिए अधिकांश रूप से दोष हमारा ही है। वर्ष 1962 से गठित आयोग अथवा सम्मेलन में जिसके 18 सदस्य देश हैं हमारी स्थिति लगभग छिन्न-भिन्न हो गई है और हमने चर्चाओं का संपूर्ण कार्यभार संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस पर छोड़ दिया जिससे उन्होंने अपनी मनमर्जी की। अद्यतन स्थिति को ध्यान में रखते हुए हमें यह देखना चाहिए कि क्या हम किसी प्रकार से परमाणु शस्त्रों के प्रसार पर रोक के संबंध में अपना कोई योगदान देने की सामर्थ्य जुटा पाते हैं। क्योंकि परमाणु शस्त्रों का जो भाव लिया जाता है तथा हमारे देश

में भूमिगत परीक्षणों के कारण उत्पन्न होने वाले विभिन्न दबावों के संदर्भ में इसका अत्यधिक महत्व है।

मेरे पास कहने को कुछ अधिक नहीं है सिवाय यह इंगित करने के कि हमारे दृष्टिकोण में यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम इस संधि को ऐसे रूप में प्रस्तुत न करें जिससे कि यह पाकिस्तान-चीन-संयुक्त राज्य अमेरिका की दुःसंधि की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्तुत हो अथवा किसी को यह कहकर हस्तक्षेप करने की अनुमति दे कि यह विशिष्ट संधि है। माननीय प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री ने कहा है कि यह किसी अन्य देश के साथ हमारी मित्रता को प्रतिबाधित नहीं करती है। यह सोवियत रूस के साथ हमारी मित्रता की प्रतीक है किन्तु केवल सोवियत रूस के साथ नहीं। हम, विशेष रूप से मैं उन में से एक हूँ जिन्होंने सोवियत रूस के साथ अपने संबंधों को अपनी आजादी बनाए रखने के लिए सदा अत्यंत महत्वपूर्ण माना है, इसका महत्व केवल सैनिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि हमारे आर्थिक विकास से भी है। काफी लम्बे समय से ऐसा ही है। यह किसी भी प्रकार से हमें हमारी स्वतंत्रता से अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, ब्रिटेन अथवा किसी भी अन्य देश से संबंध स्थापित करने के अधिकार से वंचित नहीं करती। वास्तव में, जैसा कि माननीय प्रधान मंत्री ने कहा है कि यह दूसरे देशों के साथ हमें अपने संबंध सुधारने में सहायता करेगी।

यह भी कहा गया है कि इसका समय उचित नहीं है। मैं इससे असहमति व्यक्त करता हूँ। इसमें और अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता था क्योंकि हमारी सीमाओं पर अशांति है और यदि किसी को ऐसी शंका है कि ऐसे कदम उठाकर चतुर सोवियत राजनयिक अपने फायदों के लिए संधि पर अपना नियंत्रण करने की कोशिश कर रहे हैं, तो मेरे विचारानुसार यह एक अनुचित धारणा है।

यह संधि किसी भी प्रकार से हमारी प्रभुसत्ता को अवरुद्ध नहीं करती है। बंगलादेश को मान्यता देना या न देना, जर्मन प्रजातांत्रिक गणतंत्र को मान्यता देना या न देना इत्यादि सार्वभौमिक अधिकार है। सोवियत रूस द्वारा हमें यह कहना कि "तुम इन लोगों को मान्यता नहीं दे सकते, और यदि तुम ऐसा करते हो तो वह संधि के विरुद्ध होगा" उतना ही गलत है जितना कि जर्मनी के लोगों द्वारा यह कहना कि "हमारे पास हालस्टीन सिद्धांत हैं।" मान्यता देने का अधिकार सार्वभौमिक अधिकार है और हम अपनी प्रभुता का प्रयोग अपनी भलाई के लिए करते हैं। इसके साथ-साथ यदि हम कोई गलती करते हैं तो हमें उसके परिणाम भी भुगतने पड़ते हैं।

* * *

मेरे विचार में मित्रों पर निर्भर करना ध्येय नहीं है बल्कि हमें इस जानकारी से अपनी

आत्म निर्भरता विकसित करने में मदद करना है कि जो हमारे विरोधी नहीं हैं, वे बन न जाएं। अतः ऐसा कोई भी सुझाव कि यह बंगलादेश, जर्मन प्रजातांत्रिक गणतंत्र या उत्तरी वियतनाम को मान्यता देने की हमारी सामर्थ्य में किसी प्रकार का अवरोध पैदा करता है, निराधार तथा अवैध है क्योंकि मान्यता देने का अधिकार सार्वभौमिक है तथा यह कार्य सार्वभौमिक है जो हमें अवश्य सम्पादित करना चाहिए। इसी प्रकार हमारा सोवियत रूस से यह कहना कि यह नहीं करना है या वह नहीं करना है, गलत होगा, क्योंकि वह भी एक प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्र है।

मुझे वे दिन याद हैं जब राष्ट्रमंडल के देश ब्रिटिश सरकार को झिंड़क दिया करते थे और तब उनके विदेश सचिव ने कहा था: "हम लोग भी स्व-शासित राज्य हैं।" संधि के दूसरे पक्ष के भी अपने अधिकार होते हैं और मेरे अनुसार यह बहुत ही गलत होगा और हमारी राजनैतिक अपरिपक्वता को जाहिर करेगा यदि हम यह सोचें कि चूंकि उन्होंने हमारे साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किए हैं, अतः उनके कार्यों का निर्णय मास्को में नहीं, बल्कि दिल्ली में किया जाना चाहिए। यह दो बराबर के भागीदार देशों के बीच में पारस्परिक आत्मसम्मान और आत्महित पर आधारित संधि है, समझौता है।

जहां तक गुट निरपेक्षता का सवाल है, एक समय था जब पश्चिम के देशों ने उसका उपहास और विरोध किया था। उसको अपनी कमजोरी की घोषणा करने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के प्रति अपनी निष्ठा के अभाव की घोषणा करने के समान बताया था। उसके उपरांत, वह स्थिति पैदा हुई जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने उसके प्रति बड़ा रूखा दृष्टिकोण अपनाया। अब हम उस आधुनिक काल में आ गए हैं, जिसमें वे लोग कहते हैं कि वे उसे स्वीकार करते हैं। परन्तु सोवियत रूस ने उसको शुरु से ही मान्यता दी थी और उसके विरुद्ध ऐसा कोई बहाना नहीं बनाया था कि हमारा देश गुट निरपेक्ष होने के नाते हमारी अपनी एक अलग स्थिति है और इसके अलावा, दुनिया के विकास में हमें सकारात्मक योगदान देना है तथा प्रत्येक उपनिवेशी देश को स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता करनी है तथा साम्राज्यवाद का विरोध करने में योगदान देना है।

अंत में, मैं आशा करता हूं कि यह जो संधि हमने की है, यह केवल सरकारों में ही नहीं, बल्कि सभी देशों में साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने वाली शक्तियों को प्रेरित करने और मजबूत बनाने में सहायक होगी, क्योंकि जब तक साम्राज्यवाद जिंदा है, भारत या दुनिया के किसी भी भाग में राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं आ सकती। साम्राज्यवाद से ही युद्ध का जन्म होता है और यह हमारा कर्तव्य है कि हम केवल शब्दों और प्रस्तावों या उपनिवेश विरोधी समिति की सदस्यता के द्वारा ही उसका विरोध न करें, बल्कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वालों के साथ हम अपने आप को तहेदिल से जोड़ें। केवल यही एक

तरीका है जिसके द्वारा हम साम्राज्यवादी देशों के मनसूबों को रोक सकते हैं जब वे दूसरे क्षेत्रों में दखल देते हैं, कभी दक्षिण प्रशांत क्षेत्र में तो कभी बंगलादेश में। वे मानवता की स्वतंत्रता को खतरे में डालते हैं और दूसरे देशों में हजारों अड्डे स्थापित करते हैं। इनके इन मनसूबों को खतम करने का यही एक मात्र उपाय है।

इन्हीं कारणों की वजह से, वर्तमान में जो कदम उठाया गया है, वह एक उल्लेखनीय योगदान है, इस संशोधन के साथ जिसका मैंने उल्लेख किया है कि यह कोई आकस्मिक विकास नहीं है। हमारी नीति का विकास सामान्य, सहज और स्वस्थ रूप से हुआ है। उसे तेजी से बढ़ाया गया है और मैं आशा करता हूं कि जिस सक्रियता का यह द्योतक है, वह, इस संधि और उसके उपरांत ही कार्यवाही में दिखाई देगी।

5

आणविक निरस्त्रीकरण*

उप-सभापति महोदय, संयुक्त राष्ट्र असेम्बली के 12वें सत्र में, जो इस महीने की 17 तारीख से शुरू होगा, निरस्त्रीकरण की समस्या पर मुख्य रूप से विचार किया जाएगा। इस निरस्त्रीकरण की समस्या का अर्थ केवल शस्त्रों की मात्रा या उनकी गुणवत्ता को सीमित करना नहीं है, बल्कि शस्त्रीकरण की पूरी परक्रिया को उलटने से है। यही उसका सही अर्थ है। आखिरकार, एक व्यक्ति 9" की बंदूक से मारा गया हो या 19" की बंदूक से इसमें कोई ज्यादा अंतर नहीं है। वह तो मर ही गया। अगर हम निरस्त्रीकरण के मामले में थोड़ी सी भी प्रगति कर सके, तो हम नीति की उस धारा को ही बदल देंगे, जो शक्ति के बल पर समझौता कराने, अपने विरोधियों का सफाया करने और असहिष्णुता और अन्य उन सभी चीजों पर आधारित हैं जो विश्व को खतरनाक बनाती हैं। जहां तक इस सरकार का संबंध है, हम लोग इस समस्या पर विचार करेंगे, परन्तु शक्ति गुटों से संबंधित किसी एक पक्ष पर आरोप लगा कर नहीं क्योंकि यह स्पष्ट है और परिभाषा के अनुसार यह सच है कि बिना समझौते के निरस्त्रीकरण नहीं हो सकता और अगर कोई समझौता नहीं हो रहा है तो इसमें दोनों पक्षों की गलती है, अगर कोई गलती है तो। परन्तु जो वास्तविक गलती है वह सामान्य स्थिति के संदर्भ में ही है और आज हम एक ऐसी स्थिति में आ खड़े हुए हैं जहां, जो उप समिति लंदन में कई महीनों से बहस कर रही थी, उसकी फिलहाल अंतिम बैठक हो गई है और अगली बैठक छह महीने के लिए स्थगित कर दी गई है। यह कोई दुःखद विषय नहीं है। क्योंकि इन चर्चाओं के दौरान, ऐसे कई अवसर आए जब ऐसा प्रतीत हुआ कि एक समझौता हो जाएगा। फिर, उस पर शक की धुंध छा गई और फिर सब में मतभेद उत्पन्न हो गया। वैसे भी, संयुक्त राष्ट्र की समय सारणी के अनुसार, इस समिति को अपने मूल आयोग को रिपोर्ट देने के लिए न्यूयार्क वापस जाना पड़ेगा, क्योंकि वह आयोग ही असेम्बली को रिपोर्ट पेश करेगा। जहां

*राज्य सभा डिबेट, 9 सितम्बर, 1957

तक हमारा सवाल है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हम अब उस चरण में पहुंच गए हैं जब इस समस्या को एक कदम पीछे हटकर और कुछ वास्तविकता के साथ देखना पड़ेगा। लंदन में बहस कर रही इस निरस्त्रीकरण समिति का गठन वास्तव में भारतीय शिष्टमंडल द्वारा की गई पहल पर किया गया था, जिसका आशय था कि एक छोटा दल इन विषयों पर गुप्त रूप से चर्चा करेगा। यह मामला धीरे-धीरे सार्वजनिक चर्चा के रूप में परिवर्तित हो गया और यद्यपि इसकी उपयोगिता खतम नहीं हुई, परन्तु अपनी परिपक्वता से हो गई है। परन्तु सोवियत रूस और पश्चिमी देशों के बीच के मतभेदों को साफ करने में और कई मामलों में उनको साथ लाने में इस विस्तृत चर्चा ने काफी सहायता की है। यह सोचना गलत होगा कि पश्चिमी सरकारें या सोवियत सरकार युद्ध चाहती है। न इस दुनिया के लोग और न ही सरकारें युद्ध चाहती हैं। युद्ध न सिर्फ खर्चीला और खतरनाक है, यह कोई नहीं जानता कि इसके क्या परिणाम निकलेंगे। लेकिन इस बात का सब को विश्वास है कि आधुनिक स्तर पर लड़े जाने वाले युद्ध में न कोई विजेता होता है, न कोई पराजित। सभी के सभी पराजित होंगे और यह सोचना गलत होगा कि एक तरफ विश्व के युद्ध चाहने वाले देश और दूसरी तरफ शांतिप्रिय देश हैं। सभी देश शांति चाहते हैं, लेकिन उन्हें अभी तक न तो ऐसा कोई नेता मिला या उनमें परस्पर इतना विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ है कि वे हथियारों को त्याग सकें। आज कि स्थिति यही है। इसे आप विश्वास की कमी कह सकते हैं। अतः संयुक्त राष्ट्र का सफल होना मुश्किल है और वह अपने प्रस्तावों को फिर से सदस्यों के विचार के लिए रखेगा। भारत सरकार ने अपने न्यूयार्क-स्थित राजदूत को आगाह कर दिया है कि वह महासचिव को यह सूचित करें कि भारत सरकार की इच्छा है कि निरस्त्रीकरण के मामले को अन्य मामलों की तुलना में प्राथमिकता दी जाए। यह सत्य है कि संयुक्त राष्ट्र की राजनैतिक मामलों संबंधी समिति जो अपने कार्य में विशेषज्ञ है, कार्य सूची के बारे में निर्णय लेगी परन्तु यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि हमारे जैसे देश को, जिसके पास निशस्त्रीकरण के लिए ज्यादा हथियार नहीं हैं, परन्तु शांतिप्रिय हैं और यथाशक्ति इस में और प्रयास कर रहा है। अन्य राष्ट्रों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहिए कि आज संयुक्त राष्ट्र का सबसे अहम मुद्दा निशस्त्रीकरण है। यही तो निशस्त्रीकरण का अर्थ है क्योंकि जिन प्रस्तावों पर समझौता हुआ है, उनके अनुसार अमेरिका को 25 लाख सेना, सोवियत संघ को 25 लाख सेना, चीन को 25 लाख सेना और इंग्लैंड और फ्रांस को साढ़े सात लाख सेना बनाये रखने का अधिकार दिया गया है। मैं नाम नहीं लेना चाहता, परन्तु पहले भी इस बात को कह चुका हूं कि इनमें ऐसे देश भी हैं जिनके पास उतने सैनिक नहीं हैं, जितना उन्हें रखने का अधिकार दिया गया है। इन देशों के लिए तो हथियार के मामले में अन्य देशों की बराबरी करने का मौका मिला है, मगर इस बात को नहीं भूलना चाहिए

कि आज तक विश्व के ताकतवर देश बातचीत में अपने शक्ति के आधार पर अपने विचारों को थोपने में विश्वास करते हैं मगर इस समझौते से एक ऐसी स्थिति उभर आई है कि हथियारों की वृद्धि पर रोक लग गई। पिछले वर्ष जून में भारत सरकार ने निशस्त्रीकरण आयोग के सम्मुख एक सुझाव रखा था जिसे महासभा में रखा गया कि चाहे कितने ही छोटे स्तर पर क्यों न हो इस दिशा में एक शुरु आत कहीं न कहीं से करनी चाहिए और शुरूआत उन विषयों को लेकर की जा सकती है जिनके बारे में समझौता हो चुका है और जिसमें युद्ध के खतरनाक हथियार सम्मिलित हैं, लेकिन हथियार के परिभाषा में भिन्न राय होने की संभावना है। हथियारों पर नियंत्रण या निरस्त्रीकरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, यह विषय हमेशा विवादास्पद रहेगा। इस विचार को काफी हद तक सैद्धांतिक रूप से मान्यता दी गई है और गत 12 महीनों में निरस्त्रीकरण के सवाल पर जितनी भी बातचीत हुई है, 'वह सीमित निरस्त्रीकरण' के सवाल पर केन्द्रित हुई है, किन्तु 'सीमित निरस्त्रीकरण' की लक्ष्य मानकर नहीं, बल्कि परमाणु हथियार का परित्याग करने तक एक माध्य के रूप में। "निरस्त्रीकरण" शब्द मान्यता प्राप्त करने में सफल रहा है और सब कुछ कहे जाने के बावजूद और पश्चिमी देशों की तरफ से बरतानिया और फ्रांस एवं सोवियत संघ की तरफ से श्री जोरीन द्वारा अपने अपने प्रस्ताव की रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद, दोनों पक्षों के यह कहने पर कि "बातचीत असफल सिद्ध हुई है" के बावजूद हम यह आशा रखते हैं कि दोनों पक्ष इस बात को महसूस करेंगे कि निरस्त्रीकरण का विषय एक ऐसा विषय है, जिससे मुंह मोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि आज न सिर्फ विश्व को अणु और परमाणु हथियारों से खतरा है बल्कि "मोलिक्यूल" पर आधारित हथियारों से भी खतरा है, जो बहुत अधिक मात्रा में है और इतना खतरनाक हथियार आज तक विश्व इतिहास में नहीं बना है और आज तो उपग्रहों द्वारा भी विश्व को खतरा है। मेरा तात्पर्य साधारणतः उपग्रहों से नहीं है, बल्कि उन उपग्रहों से है जो धरती से भेजा जाता है और जो जलवायु एवं अन्य चीजों पर प्रभाव डाल सकते हैं। हम आज उस दौर से गुजर रहे हैं जिसमें इस ग्रह का बाहर से नियंत्रण ही शांति स्थापना को निश्चित करेगा। अतः हम निरस्त्रीकरण के क्षेत्र में कोई अपना धर्मोपदेश या इस सवाल को सुलझाने के लिए कोई नुस्खा लेकर नहीं निकले हैं, मगर वहां जमा हुए राष्ट्रों को संप्रेषित करने के लिए कि हमारे जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देश, जिन्हें शांतिप्रिय तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सारे देश शांतिप्रिय हैं-मगर जहां शांति सिद्धांत सदियों तक व्याप्त रहा है, जिनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए बड़े पैमाने पर युद्ध न होना अत्यंतावश्यक है और पश्चिमी देशों से कहीं अधिक जिन्हें विकरण या "रेडियेशन" से खतरा है, उन देशों द्वारा इस क्षेत्र में रुचि दिखाने से इस समस्या को सुलझाने के प्रयत्न की शुरुआत करने में शायद सहायक सिद्ध हो सकती है। मगर यह

भी जरूरी है कि निरस्त्रीकरण पर बातचीत के दौरान, एक स्वतंत्र सरकार की हैसियत से हमें वहां निःसंकोच होकर अपनी बात रखनी चाहिए कि हमारे साथ एक ऐसा विश्व जन समूह है जो शांति की नीति के प्रति प्रतिबद्ध है और जो बलपूर्वक अपने अधिकारों को लेने की इच्छा नहीं रखते। कुछ साथियों को यह "शाकाहारी (बलहीन) प्रस्ताव" सा लगेगा, मगर याद रखिएगा कि ऐसे भी कई शाकाहारी हैं, जिन्होंने अपने अधिकार के मामले में कभी समझौता नहीं किया। सभी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद और अपनी सीमाओं को पूर्णतः सुरक्षित रखते हुए, अगर हम यह कह सकते हैं, जैसे हमने पिछली बार सुरक्षा परिषद में कहा कि विश्व की परिस्थितियों को देखते हुए हम अपने राजनैतिक और वैद्य अधिकारों पर दावा करने पर, चाहे वह गोआ का मामला हो या कश्मीर का, हम संयम बरतने के लिए तैयार हैं, तो हो सकता है कि हमारी बात का वजन बढ़े और कुछ असर हो।

उप सभापति महोदय, यह बड़ी दिलचस्प बात है कि इस महासभा में चेकोस्लोवाकिया जहां वामपंथी सरकार है, जो पूर्वी यूरोप की पश्चिमी सीमा और पश्चिमी यूरोप की पूर्वी सीमा के बीच स्थित है और जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसकी नीति सोवियत संघ की नीतियों के अनुकूल है तो यह देश और बेल्जियम जो एक प्रतिनिधिक पाश्चात्य देश है, जिसके पूर्व विदेश मंत्री "नाटो" के कट्टर समर्थक हैं और जिसे देश के बारे में एक इतिहासकार ने यह कहा है कि वह कोई देश नहीं है बल्कि एक सड़क है जहां से हर हमलावर सेना गुजरती है और एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर बीसीयों बार आक्रमण हो चुका है, इन दोनों देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ से कहा है कि वह इसका अध्ययन करे और "रेडियेशन" के होने पर मानवता की जो हानि और इस पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, उस बारे में जांच करे। अन्य शब्दों में, मैं यह कहना चाहता हूं कि परस्पर विरोधी सिद्धांतों के बावजूद, मानव समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को इस बात का एहसास है कि उसे अपने आप को बचाये रखना है और इस खतरे से झूझना है। शायद यह भावना विश्व के सम्मुख जो समस्याएं हैं, उनका श्रेष्ठ सुधारक सिद्ध हो सकती है और हर्ष की बात यह है कि यह पहल दो परस्पर विरोधी पक्षों की तरफ से हुई है। हम इस मामले पर पिछले दो साल से दबाव डाल रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने आणविक "रेडियेशन" का अध्ययन करने के लिए एक आयोग को नियुक्त किया है किन्तु सरकार की तरफ इसको भी कमेटी के प्रतिवेदन का लम्बे समय तक इंतजार करना पड़ेगा। वैज्ञानिकों ने अभी तक इस बारे में संपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं किया। जो भी हो, इन दो देशों द्वारा उठाए गए राजनैतिक मुद्दे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

*अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में निरस्त्रीकरण समस्या के समाधान में वर्ष 1948 से भारत की भूमिका की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करना उचित होगा। 1948 से 1951 तक निरस्त्रीकरण का संबंध केवल परमाणु शक्ति प्रसार को रोकना था तथा बारूच योजना के अन्तर्गत भी इसकी स्थिति समान थी 1952 से निरस्त्रीकरण पर मतभेद ने वर्तमान स्थिति धारण की।

निरस्त्रीकरण, अब केवल अनेक मुद्दों में से एक मुद्दा नहीं है या अति महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक मुद्दा भी नहीं है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय है क्योंकि हथियारों की मात्रा और उसके स्वरूप में इतना बदलाव आया कि युद्ध तथा उसके परिणामों की प्रकृति में भी परिवर्तन हो गया है। यह इसका मुख्य कारण है।

संयुक्त राष्ट्र के इतिहास में यद्यपि हमारे जैसे देशों ने पहली बार आचारिक तथा नैतिक कारणों से इस बात पर जोर दिया कि केवल शस्त्रों की संतुलित कटौती, जिसे निरस्त्रीकरण के नाम से सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया गया है, पर्याप्त नहीं है और भारत सरकार की ओर से सेन फ्रान्सिसको में आयोजित दसवीं वार्षिकोत्सव बैठक में यह बात कही गई कि निरस्त्रीकरण केवल युद्ध विहीन विश्व की ओर उठाया गया कदम पर्याप्त नहीं है तथा आवश्यकता युद्ध का उद्धैध बहिष्कार किया जाना चाहिए जिससे एक ऐसे समाज की स्थापना हो सके जहां युद्ध ही मतभेदों को समाप्त करने का हथियार न रहे। परन्तु गत वर्ष तक इसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था।

गत वर्ष श्री ख्रुश्चेव और उसके पश्चात् राष्ट्रपति आइजन होवर व अन्य लोगों के भाषण के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ ने काफी विवाद के पश्चात् एक युद्ध रहित विश्व के लिए निरस्त्रीकरण को लक्ष्य मान लिया और यह बात मैं नही कह रहा हूं, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं कि मेरा झुकाव उस ओर है। परन्तु इस "लक्ष्य" शब्द ने बहुत सी कठिनाइयां उत्पन्न कर दीं क्योंकि कभी-कभी "लक्ष्य" ऐसा होता है जिसे प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि वह टालने के लिए होता है और डर बना रहता है कि उसे कोई प्राप्त भी करेगा। परन्तु ऐसा है। निरस्त्रीकरण, जिसका अर्थ शस्त्रों में संतुलित कटौती निरस्त्रीकरण शस्त्रों में संतुलित कटौती से हट गया है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक देश के पास उसके अपनी सुरक्षा के लिए या संयुक्त सुरक्षा के लिए पर्याप्त शस्त्र रख सकता है और जिनमें वृद्धि की जा सकती है और जिसे अन्तर्राष्ट्रीय टकराव की स्थिति में वह उनमें वृद्धि कर सकता है। परन्तु अब हम उस "निरस्त्रीकरण" की बजाय एक ऐसी अवधारणा की ओर अग्रसर हुए हैं जिसे युद्ध विहीन विश्व के नाम से जाना जाता है और ऐसे विश्व में आगे जिसके

*लोक सभा, वाद विवाद, 23 नवम्बर, 1960

अन्तर्गत शस्त्रों का पूर्ण परित्याग करना है जिसका तात्पर्य उनके आकार में कटौती नहीं है अपितु हर तरह के उपस्करों, शक्तियों तथा सैनिक प्रशिक्षण का सम्पूर्ण परित्याग है जिसे पुराने समय में काल्पनिक समझ कर टाल दिया जाता था।

इस विचार को आगे बढ़ाने के लिए जनमत तैयार करना ही एकमात्र उपाय है क्योंकि जो कुछ भी हम कहते हैं उसके बावजूद समाज के वे वर्ग, जो आर्थिक तथा सांग्रमिक रूप से इससे प्रभावित हैं, उनके दिलों में एक भय है कि शक्ति के आग्रमन से लोग बेरोजगार हो जाएंगे तथा उनके काम धंधे ठप्प हो जाएंगे आदि आदिम लोगों ने इसे स्वीकार किया है परन्तु युद्ध विहीन दुनिया से उन्हें डर है। जैसाकि मैंने कुछ समय पहले कहा था कि आंशिक रूप से इसका कारण शस्त्रीकरण में परिवर्तन के फलस्वरूप है तथा मैं कुछ ही क्षणों में उन परिवर्तनों का उल्लेख करने का प्रस्ताव करता हूं।

गत दस वर्ष के इतिहास मे जो कुछ भी कहा गया, किया गया या नही किया गया है, उसको नजरअंदाज करते हुए यह कहा जा सकता है कि दोनों तरफ प्रगति हुई है और इस मामले में भारत की भूमिका—कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार की स्थिति न तो नगण्य थी और न ही निरर्थक। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि कल ही इस बात का जिक्र किया गया था कि हमारी स्थिति हस्तक्षेप करने की है और हमारी तुलना एक पक्ष के विरुद्ध दूसरे पक्ष के साथ नहीं की जानी चाहिए। इस विषय पर बोलते हुए मैं इस बात का जिक्र करना चाहता हूं कि निरस्त्रीकरण के कार्य में, परस्पर समझौते से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। अतः एकमत एकत्र करने की सभा की शक्ति, चाहे वह बहुमत की राय हो या अल्पमत की, उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अगले चरण में समझौता और भी कठिन हो जाता है। भारत सदैव ही इस बात का विरोध करता रहा कि सभा में असहमति पर जोर दिया जाए। अतः जब भी केवल बहुमत के द्वारा कुछ हासिल करने की कोशिश की जाती है, जिसको हम शीत युद्ध के नाम से जानते हैं, हम उससे अलग रहते हैं। इसका कारण यह नहीं कि हमारे पास देने के लिए कोई राय नहीं है, अपितु इसका कारण यह है कि हम इस बात को भलीभांति जानते हैं कि बहुमत का कोई महत्व नहीं है। मैं समझता हूं कि इसका सबसे प्रमुख उदाहरण दक्षिण अफ्रीका के मुद्दे पर वोट डालना है, जहां प्रत्येक वर्ष हम पर्याप्त मत संग्रह करते हैं और आजकल किसी भी समझौते के लिए केवल दक्षिण अफ्रीका के वोट की हमें आवश्यकता है जिसे हम किसी न किसी दिन हासिल करेंगे।

हमारे द्वारा उठाए गए मुद्दे की स्थिति यह है। दो पक्षों के बीच बहुत से तर्क हो रहे हैं एवं हुए हैं, जिनमें से कल प्रधानमंत्री ने एक का जिक्र किया था कि यह मतभेद उत्पन्न हुआ कि नियंत्रण पहले आता है या निरीक्षण अर्थात निरस्त्रीकरण पहले आता है या अन्त में। गत दस वर्षों के दौरान संयुक्त राष्ट्रसंघ ने दो शक्तियों को अनुनय-विनय और आपसी बातचीत से समझौते पर लाने के प्रयत्न किए और इससे बहुत से मुद्दों पर समझौते भी हुए। परन्तु जब भी किसी समझौते के निकट पहुंचते हैं दोनों पक्षों में से कोई एक पक्ष कोई न कोई ऐसी समस्या सामने रख देता है जिससे कि दूसरा पक्ष अस्वीकार कर देता है। इसलिए मैं कहता हूं कि निरस्त्रीकरण के मामले में आम शंका बनी हुई है और एक अमरीकन सूत्र ने जिस तरह से इसपर प्रकाश डाला है, उससे बेहतर मैं इसें नहीं समझ सकता। वर्तमान प्रावधानों का परीक्षण करते हुए इस वर्ष कार्नजी फॉउनडेशन से एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें यह कहा गया—मेरे पास पूरी रिपोर्ट नहीं है, परन्तु यह उसका एक उद्धरण है:-

प्रत्येक पक्ष द्वारा प्रस्तुत योजना में बहुत से प्रस्ताव होते हैं जो बेहद लोकप्रिय लगते हैं। लेकिन इस तरह के हर प्रस्ताव में कम से कम एक मुद्दा ऐसा अवश्य होता है जिसे दूसरा पक्ष स्वीकार नहीं कर पाता है और वह प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है। फिर उसके बाद प्रस्ताव रखने वाले पक्ष को यह कहने का अवसर मिल जाता है कि प्रतिपक्षी निरस्त्रीकरण के सिद्धांत से पूर्णतया असहमत है। अतः प्रस्तावों की प्रत्येक श्रृखला में आपत्तिजनक मुद्दे को परिहास ही माना जा सकता है।

वे इसे एक प्रकार से खेल के रूप में ही लेते हैं। आज यह कोई नई बात नहीं है। बल्कि यह प्रवृति लीग ऑफ नेशन्स में निरस्त्रीकरण वार्ता के पुराने दौर में भी विद्यमान थी। यह हमारा अनुभव रहा है कि पहले साल में प्रस्तावों के कुछ मुद्दों पर रूस आपत्ति करता रहा है पर अगले वर्ष वह उन्हें स्वीकार कर लेता है लेकिन तब उन्हीं मुद्दों पर अमेरिका यह पश्चिमी देश आपत्ति करने लगते हैं और इसी तरह प्रत्येक बार कोई न कोई उसका विरोध करता रहता है। इस रूप में यह कार्य कभी आगे बढ़ता है तो कभी फिर उसी स्थिति में आ जाता है। फिर 1952 में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि इसमें पूर्ण गतिरोध आ गया। फिर मुख्यतः हमारी पहल पर ही "जनरल असेम्बली" ने दिशा-निर्देश जारी किए कि आगे इस विषय में क्या किया जाना चाहिए। आज हम हथियारों के स्वरूप के कारण इस अवस्था में पहुंच गये हैं कि अगर हम युद्ध को हमेशा के लिए नहीं टालेंगे तो युद्ध हमें पूर्णतया नष्ट कर देगा। ऐसे हाइड्रोजन और परमाणु हथियार बना लिए गए हैं जिनसे महाविनाश तो होगा ही लेकिन साथ ही इससे युद्ध की शुरुआत भी अपने आप में

एक सुदूरवर्ती सम्भावना मात्र नहीं रह कर एक आसन्न संकट हो गया है। इसके दूसरे कारण हैं जिन पर कभी-कभी राजनीतिज्ञ भी गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं कर पाते। इसका अर्थ यह नहीं है कि युद्ध की सम्भावना अब क्षीण है। बल्कि वर्तमान संदर्भ में हम स्वचालित शस्त्र-विद्या वाले संसार में रहते हैं जहां युद्ध बिना किसी सम्भावना के सिर्फ दुर्घटनावश या तर्कहीन भय के कारण भड़क सकता है। इसकी शुरुआत या तो किसी दुर्घटना के कारण हो सकती है या "तर्कसंगत तर्कहीनता" की प्रक्रिया से जिसमें व्यूह-रचना और हथियारों की निवारण क्षमता के संबंध में गलत गणना हो जाती है। इसकी शुरुआत उत्प्रेरक युद्ध से भी हो सकती है जिसमें छोटे-छोटे देश यह सोचते हैं कि वे अपने लाभार्थ बड़े देशों को युद्ध में घसीट सकते हैं। फिर अगर कोई देश अपने समुद्र के भीतर बनाए गए अड्डे का उपयोग करते हुए अपने किसी हथियार का प्रयोग करता है जिसमें गलती या दुर्घटना से वह हथियार उसके अपने ही देश में गिर पड़ता है जहां कि उसे निर्मित किया गया तो निश्चय ही युद्ध की शुरुआत हो जाएगी। क्योंकि दूसरा पक्ष सोचेगा कि नाभिकीय प्रहार शुरू किया जा चुका है। इस तरह के हथियार से लैस देश कहेंगे कि अब चूंकि हमारे हथियार उजागर हो चुके हैं इसलिए हमें इनसे प्रहार शुरू कर देने चाहिए अन्यथा दूसरे पक्ष के त्वरित जवाबी हमले से हम बर्बाद हो जायेंगे। आज इन हथियारों के परिणामस्वरूप, युद्ध के पहले ही दौर के कुछ घंटों में जिस देश पर हमला किया गया हो उस देश में हताहतों की संख्या 50-60 मिलियन हो सकती है। ऐसा कहा जाता है कि 263 परमाणु बम जिनका औसत भार लगभग 1470 मेगाटन है संयुक्त राज्य अमेरिका की 90 प्रतिशत आबादी को कुछ ही घंटों में समाप्त करने के लिए पर्याप्त है और यही बात दूसरे देशों पर भी लागू होती है। लेकिन मृत्यु के ये विशाल आंकड़े और भय शस्त्र होड़ की समस्या पर काबू पाने में मदद नहीं करते क्योंकि शस्त्रीकरण भय के फलस्वरूप ही किया जाता है। और हम डर को डर से नहीं मिटा सकते।

इसलिए हमें उस स्थिति पर विचार करना है जिसमें यह समझा जाता है कि शस्त्रीकरण के चार उद्देश्य हैं: पहला देश की सुरक्षा, दूसरा उपनिवेशों के अधिग्रहण का विस्तार, तीसरा आर्थिक घुसपैठ के जरिये बाजार स्थापित करने का मुद्दा और चौथा सैद्धांतिक संघर्ष में अपना वर्चस्व बरकरार रखना। इस समय में इन सब चीजों के बारे में विस्तार से नहीं कहूंगा। लेकिन मैं समझता हूं कि हम इस बहस के संदर्भ में अन्तिम तीन उद्देश्यों को नजरअंदाज कर सकते हैं क्योंकि जैसा कि मैंने कहा कि उपनिवेशों पर अब कमोवेश प्रतिबंध लग चुका है, आर्थिक मुद्दों का स्वरूप आज कुछ दूसरा है और राष्ट्रों के बीच आर्थिक सहयोग पर जोर दिया जा रहा है तथा सैद्धांतिक मतभेद, साम्यवाद और साम्यवाद-विरोध की उपस्थिति के बावजूद आज इतने तीव्र या कटु नहीं रहे जितना कि

धर्म युद्ध के समय यह था क्योंकि अब सहअस्तित्व को कमोवेश स्वीकार कर लिया गया है।

अब रह जाता है सुरक्षा का प्रश्न। लेकिन पिछले दो वर्षों में निश्चय ही यह सुरक्षा का प्रश्न जिसे राष्ट्र की किलेबन्दी कहा जाता है, अप्रासंगिक हो गया है क्योंकि हथियारों की मात्रा और मारक क्षमता इतना ज्यादा हो गया है कि अब वे किसी को विचलित नहीं कर पाते क्योंकि ये हथियार बिना विश्व युद्ध के प्रयोग नहीं किए जा सकते, अगर किए भी जाते हैं तो इसका अर्थ है पूर्ण विनाश जिसमें इस तरह के हथियार रखने वाले को दूसरों की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही खतरा हो जाता है। इन हथियारों के निवारक क्षमता पर बहस करते हुए यह दलील दी जाती है कि इस प्रकार के परमाणु अस्त्र प्रतिपक्षी को युद्ध छेड़ने से रोकता है। इस प्रकार के हथियारों के अस्तित्व के औचित्य का अर्थ है अपने प्रतिपक्षी में विश्वास व्यक्त करना कि वह संसार को नाश करने के लिए अपने हथियारों का प्रयोग नहीं करेगा। जबकि निरस्त्रीकरण की दिशा में सबसे बड़ी समस्या है अपने प्रतिपक्षी में विश्वास का अभाव। दोनों चीजें अपने आप में विरोधाभास से भरे हैं। इसलिए अब पूरी बात बेतुकी हो चुकी है जबकि इस पुराने विचार में कोई तथ्य नहीं रहा कि जिसके पास हथियार हैं वे दूसरों से श्रेष्ठ हैं।

दूसरा प्रश्न है प्रतिस्पर्धा का जिसे शस्त्रीकरण होड़ कहा जाता है। यह शस्त्रों की होड़ बहुत ही गलत है जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के विरुद्ध अधिक से अधिक घातक हथियारों का संग्रह करता है। लेकिन अब यही एकमात्र स्थिति नहीं है। आज एक राष्ट्र को अपने ही विरुद्ध हर समय प्रतिस्पर्धा इस मायने में करनी पड़ती है कि किसी विशेष हथियार का निर्माण पूर्ण होने के पहले ही वह पुराना पड़ जाता है और दूसरे प्रकार का हथियार बनाने की कोशिश शुरू करनी पड़ती है। इस तरह से उसे अपने ही आर्थिक और तकनीकी शक्ति से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। अब तो प्रौद्योगिकीविद् कहने लगे हैं कि दुनियां में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका निर्माण न किया जा सके। ऐसी स्थिति में जो भी वस्तु बनाई जाती है वह पुरानी पड़ जाती है।

तीसरा, अंतरिक्ष अनुसंधान से जो स्थिति बनी है उसमें कुछ लोगों का सोचना है कि न तो संयुक्त राज्य अमेरिका और न ही सोवियत संघ इस दिशा में कोई नियंत्रण चाहता है। इसलिए हम तकनीकी विकास के कारण इस अवस्था में पहुंच चुके हैं जिससे कि अंतरिक्ष में किसी प्रकार का नियंत्रण तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि युद्ध पर पूर्णतया प्रतिबंध न लगा दिए जाएं।

चौथा, बहस में हमेशा निरीक्षण और नियंत्रण पर जोर दिया जाता है और हमारी सरकार ने शुरू से ही कह रखा है कि निरीक्षण और नियंत्रण के उचित तंत्र के अभाव में

पूर्णतया निरस्त्रीकरण नहीं हो सकता है। कम से कम निजी बातचीत के दौरान यह बात सभी स्वीकार करते हैं कि निरीक्षण और नियंत्रण का कोई भी तरीका अपने आप में पूर्ण नहीं है अर्थात् नियत्रंण और निरीक्षण का ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे सभी मामलों पर यह प्रभावी रूप से कार्य कर सके और हथियार को लक्ष्य से पूर्व रोक सके। अगर रूस अपना प्रक्षेपास्त्र संयुक्त राज्य अमेरीका पर छोड़ता है तो वह प्रक्षेपास्त्र नियंत्रण तंत्र के कार्य शुरू करने के पूर्व ही वहां पहुंच चुका होता है। इसलिए नियंत्रण तंत्र को समय से पूर्व ही चालू करना पड़ेगा और यह तभी सम्भव है जब हममें इसके लिए आपसी सहमति हो और यही सहमति हमारे निरस्त्रीकरण वार्ता का आधार है।

इसलिए हम हथियारों में संतुलित कटौती की अवधारणा से हटकर इसके घोषणापत्र में अंकित सीमा, जितनी कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जरूरी हो, तक रखने की स्थिति तक आ चुके हैं क्योंकि हथियारों की होड़ में छोटे-छोटे राष्ट्रों के भी बड़े राष्ट्रों की तरह खतरनाक हो जाने की आंशका है। उसी प्रकार अगर परमाणु हथियारों तथा सभी प्रकार के उच्च विस्फोटक हथियारों पर प्रतिबंध लगा दिया जाये, उन्हें नष्ट कर दिया जाए या विघटित कर दिया जाए तो भी यह आशंका है कि वे सभी युद्ध भड़क उठने की स्थिति में पुनः इकट्ठा कर लिए जायेंगे। मैं इसे इस रूप में कहना चाहूंगा कि अगर बड़े राष्ट्र अपने हथियारों में 1870 या 200 वर्ष पूर्व के स्तर तक भी कटौती कर देते हैं तो भी अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष उत्पन्न हो जाने की स्थिति में पुनः वे सभी हथियार इकट्ठा कर लिए जायेंगे क्योंकि उन हथियारों को बनाने वाली और उनके उत्तराधिकारी, वह तकनीक, वह उद्योग और भय तथा आवेश जो युद्ध शुरू करवाते हैं, यथावत बने रहेंगे। इसलिए किसी भी प्रकार के निरस्त्रीकरण का मूल्य उन हथियारों को हटाने में नहीं है। इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें जनरलों ने अपने आप को युद्ध के अन्त में स्थापित किया हो या उन हथियारों का प्रयोग युद्ध के अन्त में हुआ हो जिनसे इसकी शुरुआत की गयी हो। आज हम अंतरिक्ष अनुसंधान और नाभकीय एवं ताप-नाभकीय हथियारों के कारण इस स्थिति में पहुंच गए हैं जिसमें निरस्त्रीकरण समस्या पूर्णरूपेण अर्थहीन हो गयी है और अब एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाना जरूरी हो गया है।

पिछले दो-तीन वर्षों में एक और मुद्दा तब उभर कर सामने आया जब ग्रेट ब्रिटेन ने पहले छोटा सा बम बनाया और उसका विस्फोट क्रिसमस द्वीप में किया। उसके बाद जब फ्रांस ने सहारा में अपना विस्फोट परीक्षण करने पर जोर दिया तो उसे चौथी महाशक्ति समस्या का नाम दिया गया। अब यह मात्र चौथी या पांचवीं महाशक्ति बन जाने की समस्या नहीं है बल्कि आणविक शक्ति जुटाने की असीम होड़ सी लग गई है। पिछले वर्ष अमरीका ने महान वैज्ञानिक डेविडन की अध्यक्षता में वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा इस संबंध में जांच करवायी । उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा कि इस समय भारत सहित 10

देश ऐसे हैं जिन्होंने नाभकीय अनुसंधान में काफी प्रगति कर ली है और उनके पास नाभकीय ईंधन है जिससे बम बनाये जा सकते हैं। अब तो इन देशों की संख्या लगभग 20 हो गई है। इस रिपोर्ट से जो कि पूर्णतया शैक्षणिक है, थोड़ा हटकर हम कह सकते हैं कि जर्मनी, चीन, जापान, इटली और इजरायल जैसे सभी देशों द्वारा इन हथियारों का उत्पादन संभव है और इसके परिणामस्वरूप परमाणु हथियारों का नियंत्रण असंभव हो जायेगा।

वर्तमान अवस्था में जब तक सोवियत संघ, सयुंक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन जैसे बड़े देश जिनकी इस दिशा में ज्यादा जिम्मेदारी समझी जा रही है, निरस्त्रीकरण में योगदान नहीं देते हैं और अगर इस समय निरस्त्रीकरण नहीं होता है तो बाद में निरस्त्रीकरण की आशा करना व्यर्थ है। मैं प्रधानमंत्री के इस विचार से जो कल उन्होंने व्यक्त किया था कि अगर अगले तीन-चार या पांच वर्षों में निरस्त्रीकरण नहीं होता तो कभी भी निरस्त्रीकरण नहीं हो सकता, के महत्व को भलीभांति समझता हूं।

इसके अतिरिक्त इन हथियारों के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। अब इनके बनाने की कई प्रणालियां मौजूद हैं। जर्मनी में प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित किया जा रहा है जिसके माध्यम से इन हथियारों का उत्पादन काफी सस्ता और आकार भी काफी छोटा हो जायेगा। नागासाकी और हिरोशिमा में गिराये गये बम का वजन 20 किलो टन बताया जाता है। अब वे इन्हीं 20 किलो टन के वजन के बराबर बम की सहायता से अपेक्षाकृत अधिक क्षमता वाले बमों को छोड़ने का काम कर रहे हैं। ये बम अब दियासलाई की भांति हो गये हैं। सबसे मुख्य कठिनाई यही है कि इन मेगाटन बमों के एक बम की क्षमता अब तक विश्व इतिहास में किये गये कुल विस्फोटों की क्षमता के बराबर है और इस प्रकार से एक बम से ही बहुत बड़ा खतरा है। इतना ही नहीं, अब तो इन हथियारों को छोटे आकार में बनाने की विधि भी वे सीख चुके हैं। ऐसा समझा जाता है कि 50 टन का बम बनाया जा चुका है और उन वैज्ञानिकों का कहना है कि अगले वर्ष तक इसका आकार 10 टन और फिर अगले वर्ष 5 टन तक छोटा कर डालने में सफल हो जायेंगे। 2-3 वर्ष पूर्व हमारे प्रतिनिधि द्वारा व्यक्त किये गये उस विचार, कि परमाणु हथियार परम्परागत हथियारों की तरह ढोने में सुगम हो जाएंगे, विज्ञान की कथा कहकर उपहास उड़ाया गया था लेकिन वह विचार अब सत्य प्रतीत होने लगा है। अब इन सबका यही अर्थ है कि युद्ध को अगर हम खत्म नहीं करेंगे तो युद्ध हमें खत्म कर डालेगा। इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि आज इन चीजों का त्याग करने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता इन्हें नियंत्रित करने के लिए नहीं रह गया है। अब इस बात को धीरे-धीरे महसूस किया जाने लगा है और इस साल हम संयुक्त राष्ट्र में इस स्थिति में पहुंच गए हैं।

इस वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में इस विषय में गत्यावरोध आ गया था, यहीं से सर्वप्रथम हमने शुरुआत की। गत वर्ष का प्रस्ताव युद्ध के त्यागने के संबंध में था जिसमें दस महाशक्तियों को आपस में वार्ता करने को कहा गया था। यह दस महाशक्तियों की आपसी वार्ता संयुक्त राष्ट्र की परिधि से बाहर थी क्योंकि किसी एक वार्ता समिति पर सहमति होना संभव नहीं था जबकि उसे दोनों ही पक्षों को केवल अपील ही करने का अधिकार होता। अतः मुख्यतः हमारी पहल पर यह निर्णय लिया गया कि दो देश एक दूसरे से सीधे बातचीत करें। तब वहां दस महाशक्तियों की समिति बनाने की बात की गई, चाहे यह असंवैधानिक थी या नहीं परन्तु संयुक्त राष्ट्र के अधीन यह आपसी समझ का परिणाम थी। हालांकि फिर भी इसकी परिणति इस अर्थ में दुखद ही रही कि यह वार्ता क्रम आगे नहीं बढ़ सका और इसमें एक प्रकार का गतिरोध आ गया और इसकी अंतिम अवस्था में वह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति आयी जबकि शिखर बैठक जनेवा में पूर्णतः टूट गयी।

असेम्बली की बैठक ऐसी परिस्थिति में हुई जब दस महाशक्ति समिति के प्रत्यक्ष वार्ता दुखद ढंग से असफल हो चुकी थी, कोई अन्य प्रस्ताव नहीं था और इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई थी। और सबसे बड़ी बात, वह प्रस्ताव जिसका जिक्र मैंने कुछ देर पहले किया था, जो कि इस स्थिति के प्रतिकार के रूप में था यानि कि दोनों पक्षों को एक साथ बैठाना निहायत ही जरूरी हो गया था अन्यथा दोनों पक्ष एक दूसरे से बात नहीं कर पाते। उस वार्ता क्रम में पूर्णतया अवरोध आ गया था जिसे निर्मुक्त करने के बारे में कुछ न कुछ सोचा जाना जरूरी था। विभिन्न समूहों से वार्ता करने के निर्णय लेने से पूर्व न जाने कितने दूसरे तरीके इस संबंध में अपनाये गये और वे सब अभी भी विकास के क्रम में हैं।

लेकिन, उसी समय हमने आम बहस में यह कहा कि अब हम 1952 की स्थिति में आ गए हैं जब हथियारों की संतुलित कटौती के संबंध में पूर्ण गतिरोध आ गया था और इस संबंध में सारी पहलें बंद हो गई थीं। तब हमने स्थिति को सहजता से स्वीकार करते हुए वार्ता समिति को सुझाव दिया था कि ये-ये चीजें करो और इस संबंध में निर्देश जारी किए गये थे और यही कारण है कि पिछले 5-6 वर्षों से इस संबंध में कोशिश हो रही है, भले ही यह असफल प्रतीत होती है, हालांकि ऐसा सोचना गलत होगा क्योंकि इस दिशा में न तो कोई परिणाम निकला न ही कोई हथियार फैंके गये, फिर भी निरस्त्रीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया में निश्चय ही काफी ज्यादा प्रगति हुई है।

हम अब फिर उसी गत्यावरोध की स्थिति में पहुंच गये हैं जहां यह विचार व्यक्त किया गया था कि हमें असेंबली तथा वार्ता में शामिल होने वाले व्यक्तियों को दिशा

निर्देश देने चाहिए। हम अभी भी समझौता वार्ता करने वाले समूह, जो सभी को स्वीकार्य हों, को ढूंढ पाने के लक्ष्य से दूर हैं। सोवियत संघ ऐसी वार्ता समिति चाहता है जिसमें अन्य 5 लोगों के अलावा 5 पश्चिमी देशों के तथा 5 गुट-निरपेक्ष देशों के सदस्य शामिल हों। अगर यह संभव भी होता तो भी यह अवांछनीय था क्योंकि न तो गुट निरपेक्ष देश और न ही पश्चिमी देश विश्व के तीन खेमों में विभाजन को, यानी दो महाशक्तियों का खेमा और एक गुट निरपेक्ष देशों के खेमा, स्वीकार करते, इसे वे सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते थे। लेकिन व्यवहार में कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था संभवतः उभर कर सामने आ सकती है जिससे अनायास ही एक अप्रत्यक्ष संभावना उन्हीं लोगों के द्वारा निकाली जा सकती है जो हमारी नीतियों की आलोचना करते हैं।

अन्ततः कुछ देशों ने गुट निरपेक्षता की नीति अर्थात किसी भी देशों के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं दिखाने का सिद्धांत अपनाया है जिसमें निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाया जाता है; हालांकि हम हमेशा उतने तर्कपूर्ण ढंग से मतदान नहीं कर पाते हैं जितना कि करना चाहिए, फिर भी हमारे निष्पक्ष विचार व्यक्त करने की कोशिश ने ऐसी स्थिति ला दी है जिसमें दोनों ही गुट अर्थात पश्चिम तथा पूर्वी आवश्यक समस्याओं के समाधान हेतु कभी प्रत्यक्ष रूप से तो कभी सकुचाते हुए तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से इन गुट निरपेक्ष राष्ट्रों की ओर देखते हैं। अभी असेंबली के समक्ष पूर्वी और पश्चिमी देशों के कई प्रकार के प्रस्ताव हैं जिनमें सयुंक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, इटली और दूसरे पश्चिमी देशों के प्रस्तावों के अलावा सोवियत संघ, पौलेण्ड और दूसरे पूर्वी देशों के प्रस्ताव हैं तथा एक दो प्रस्ताव अन्य देशों के भी हैं। यों तो वर्तमान समय में सभी प्रस्तावों की स्थिति एक समान है लेकिन मेरे न्यूयार्क से प्रस्थान से पूर्व यह स्थिति थी कि हमारे देश के साथ-साथ कई अन्य देशों के प्रस्ताव भी थे जो 5-6 सप्ताहों के लम्बे समय तक वार्ता का परिणाम थे। इन प्रस्तावों का निश्चय ही अभी एक विशिष्ट स्थान है। भले ही कोई इसे औपचारिक तौर पर न कहे लेकिन इस पर सामान्य दृष्टिकोण यही है कि इस आधार पर अगर कोई समझौता होता है तो इस पर सर्व-सहमति प्राप्त करना संभव हो जाएगा। प्रस्ताव का आधार पूर्व में जो कुछ कहा गया है उसे दोहराना तथा दिशा निर्देश निर्धारित करना है।

इन अनुदेशों में शस्त्रों को नष्ट करना, सैनिक अड्डों, प्रशिक्षण की सुविधाओं, तथा हथियार कैरियर को खत्म करना शामिल है। इसमें भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय तथा आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए अपने-अपने राज्य क्षेत्र में पुलिस बल तैनात करने का प्रावधान भी है जो संयुक्त राष्ट्र के अधीन होगा। इसके लिए घोषणा-पत्र में संशोधन करने की आवश्यकता भी है, और दोनों पक्षों द्वारा इसकी आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है क्योंकि घोषणा-पत्र में वस्तुतः केवल सैन्यदल, वायु सेना तथा नौसेना की व्यवस्था है, जो कि संयुक्त राष्ट्र के अधीन होगी। उसे भी ध्यान में रखा गया है।

परन्तु, जैसा कि मैंने समिति को बताया कि, हम यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि इस मुद्दे पर हम एकमत हैं। हमें आशा है कि हम ऐसा कर लेंगे। इसी के साथ ही सभा के लिए यह एक दिलचस्प सूचना है कि संयुक्त राष्ट्र तथा सोवियत संघ के प्रतिनिधियों ने समिति को सूचित किया है कि वे कुछ अंशों से सहमत हैं, परन्तु उनके विचार से इसमें कुछ ऐसे अंश हैं जिनसे संतुलन नहीं बनता। प्रत्येक के अनुसार संतुलन का सही चित्रण नहीं किया गया है। यह आशा का लक्षण है। उन्होंने सोचा कि कुछ दिनों के पश्चात-शायद हमारे प्रतिनिधि मण्डल का उल्लेख करते हुए कोई पक्ष समझौता कराने में सफल हो सकेगा और उसी कारण इस प्रश्न पर चर्चा को स्थागित कर दिया गया।

साधारणतः जब कोई मुद्दा सामने आता है, तो उसे समाप्त करने के पश्चात ही दूसरा मुद्दा लिया जाता है। इन्हीं कारणों से, इस परम्परा को अनदेखी करते हुए यह सुविधाजनक समझा गया कि इस मुद्दे पर आगे विचार विमर्श किया जाएगा हर जगह इस बात को महसूस किया जा रहा है कि शस्त्रों का विद्यमान स्वरूप तथा आकार इस प्रकार का है कि जब तक इस मुद्दे पर सहमति नहीं होगी शस्त्रों में वृद्धि होती रहेगी।

इस बात की भी सूचना है कि अर्थ शास्त्रियों के आकलन के अनुसार चीन जैसा विशाल क्षमता वाला देश 1970 तक आर्थिक तथा औद्योगिक क्षेत्र में उस स्थिति तक पहुँच जाएगा जो 1960 में रूस की थी—उस प्रकार की विशाल क्षमता और उन्नत जापानी प्रौद्योगिकी तथा इसके अलावा छोटे देशों में परंपरागत हथियारों के उत्पादन तथा विशेषतः इस क्षेत्र में जर्मनी की उपलब्धियों को देखते हुए हर तरफ यह आशंका है कि हम ऐसी स्थिति की ओर जा रहे हैं जो नियंत्रण से बाहर होगी। हम उसका भी स्वागत करते हैं। प्रत्येक पक्ष ने यह स्वीकार किया है, यद्यपि सार्वजनिक रूप में नहीं, कि अन्तरिक्ष पर नियंत्रण रखना आवश्यक है तथा इस उद्देश्य के लिए अन्तरिक्ष के बाहर के क्षेत्र का प्रयोग निषेध होना चाहिए।

इस मामले में सबसे प्रमुख समस्या यह है कि अमरीका तथा पश्चिमी देशों में रहने वाले लोग यह समझते हैं कि इन्हें यह सब कुछ स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है जबकि सबसे दिलचस्प बात यह है कि ये सभी शक्तिशाली देश सेना, सैनिक कॉलेज तथा रक्षा मंत्रालयों आदि को समाप्त करने की सार्वजनिक रूप से घोषणा करते हैं, परन्तु व्यावहारिकता में पश्चिमी देशों में रहने वाले—यद्यपि यह सही नहीं है, साफ शब्दों में समझते हैं कि उन्हें कोई महान कार्य करना चाहिए, उस पर सहमत होने की सोचते हैं तथा समझते हैं कि पहले रूस उस बड़े कार्य को करने के लिए सहमत हो जाए तो हम अगला कदम उठाएंगे। रूस तथा दूसरे निष्पक्ष राष्ट्रों की राय है कि यह समस्या आने

वाले दस या बारह वर्ष में समाप्त नहीं होगी; इस मुद्दे पर महा शक्तियों और पूरी असेम्बली द्वारा वचनबद्ध प्रतिज्ञा होनी चाहिए, ताकि पूर्ण निरस्त्रीकरण संभव हो सके। अब तक जितनी भी वार्तायें हुई हैं उनमें कुछ उपाय खोजने का प्रयास किया गया है ताकि दोनों पक्षों में समझौता हो सके तथा किसी हद तक आंशिक उपाय ढूंढे जा सकें, उन पर विचार विमर्श तथा उन पर अमल किया जा सके। यह तभी संभव है, यदि रूस इसे बिना किसी शर्त मंजूर कर ले, तभी इस दिशा में प्रगति संभव हो सकती है। किन्तु रूस को आशंका है कि यदि आंशिक उपायों पर ही बातचीत केन्द्रित रखेंगे तो पश्चिम के देश केवल आंशिक उपायों की ही बात करेंगे तथा अन्य किसी मुद्दे पर वे बात नहीं करेंगे। इसी प्रकार अमेरीका यह कहेगा कि यदि आप इस उद्देश्य से सहमत होंगे तो रूसी कहेंगे कि हम एक समझौता तैयार करेंगे तथा सब कुछ लिखित में करेंगे। इस प्रकार हम प्रगति नहीं कर सकते। यहां पर—मैं बाधा नहीं कहूंगा—परन्तु यह खतरा है कि इसमें कठिनाइयां आ सकती हैं, इसलिए कोई समझौता करना दोनों पक्षों की समझदारी और अन्य लोगों की क्षमता पर निर्भर करता है। तभी हम कुछ प्रगति कर सकते हैं। प्रगति में एक आशा की झलक यह है कि इन तीनों के बीच कोई छोटे समझौते हुए हैं। मुख्य बात यह है कि क्या ये समझौते पूर्ण होंगे भी या नहीं। क्या इन कुछ समझौतों में परमाणु विस्फोटों को स्थगित करने संबंधी कदम शामिल है। महोदय, आपको याद होगा कि कोई छह या सात साल पहले प्रधान मंत्री ने सभा में परमाणु परीक्षण तथा विस्फोट के स्थगन के संबंध में एक वक्तव्य दिया। अनेक वर्षों तक इसे निरस्त्रीकरण की शर्तों में शामिल करने के लिए स्वीकार नहीं किया गया। और अभी भी इसे निरस्त्रीकरण नहीं अपितु हथियारों पर नियंत्रण कहा जाता है। अठारवीं सदी के बिशपों की तरह पश्चिमी देशों के सरकारी वैज्ञानिकों के विचार भी सदैव सरकारी विचारों के अनुरूप होते हैं। अन्य लोगों की तरह इन्होंने कभी भी इनके दुष्परिणामों पर जोर नहीं दिया तथा इन विस्फोटों के बारे में ऐसे विचार व्यक्त किए जैसे कि ये विस्फोट केवल वैज्ञानिक हैं। संयोगवश, संयुक्त राष्ट्र के ध्यान में बहुत से ऐसे प्रकाशन लाए गए जिनमें विस्फोटों का उद्घाटन करने वाले लोगों ने स्वयं ही कहा कि उनके उद्देश्य वैज्ञानिक नहीं हैं, बल्कि उनका लक्ष्य परमाणु हथियारों का विकास करना है। जब तक ऐसे विस्फोटों की अनुमति दी जाएगी तब तक यंत्र युद्ध और विनाश को रोका नहीं जा सकता है। यदि आप एक हथियार का प्रयोग करने के अनिच्छुक हैं, तो फिर इसका निर्माण क्यों करते हैं। इसका यह अभिप्राय है।

खैर, यह विचार-विमर्श जनेवा में लगभग एक वर्ष तक चलता रहा तथा संधि के दो तिहाई भाग पर सहमति हो गई। परन्तु एक तिहाई भाग, जिसमें भूमिगत परीक्षण

तथा निरीक्षण समिति शामिल हैं, पर सहमति नहीं हो पाई है एवं इन मुद्दों पर एकमत जुटाना कठिन कार्य है।

जहां तक निरीक्षण समिति का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि यदि पूर्ण निस्त्रीकरण की ओर अग्रसर हुआ जाए तो इस मुद्दे पर कोई समझौता सम्भव है परन्तु साथ ही हमारे देश के लिए यह निराशाजनक बात है कि रूस तथा अमरीका दोनों ही, भूमिगत विस्फोट करने पर सहमत हो गये हैं पश्चिमी देशों ने भूमिगत विस्फोटों का आग्रह किया तथा इसे स्वीकार कर लिया गया है। हमारी सामान्य नीति के अनुसार जब भी रूस और अमरीका के बीच कोई समझौता होता है तो हम उसे यह सोचकर सुधारने की कोशिश नहीं करते कि किसी अति उत्तम चीज को पाने के लिए हम उत्तम का त्याग बिल्कुल नहीं कर सकते। इन भूमिगत विस्फोटों के मामले को सभा के समक्ष इस तरह से प्रस्तुत किया गया, जैसे कि एक छोटा सा गड्ढा खोदने जैसा एक मामूली कार्य हो। अब यह बात सामने आ गई है कि ये शस्त्रीकरण के क्षेत्र में गंभीर तथा बड़े कार्य हैं। हम इसका एक उदाहरण लेते हैं। प्रत्येक गड्ढे पर 30 मिलियन डालर की लागत आएगी। इस कार्य के लिए विशाल नमक खानों को प्रयोग में लाया जाता है। इस अनुरक्षण की पूरी प्रक्रिया पर करीब एक बिलियन डालर का खर्चा आएगा।

मैं यह सब इस समस्या की गंभीरता को दर्शाने के उद्देश्य से कह रहा हूं। फिर भी इस बात की आशा की जाती है कि इस मामले में कुछ प्रगति होने की सम्भावना है। यदि इस मामले में कोई प्रगति नहीं हुई, तो डर इस बात का है कि कहीं विस्फोट पुनः आरम्भ न हो जाए। यदि विस्फोट दुबारा प्रारंभ हो गए तो न केवल विश्व में आयनन तथा विकिरण वृद्धि होगी केवल संयुक्त राज्य में ही विकलांग बच्चों के जन्म दर 4 से 5 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी। बल्कि इस का नतीजा यह होगा कि अधिक से अधिक देश भी ऐसा ही करेंगे। क्योंकि इन परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाने से परमाणु शक्ति बनने की समस्या आंशिक रूप से हल हो जाएगी।

इसके अतिरिक्त छोटे हथियारों की भी समस्या है। फ्रांस के दिगॉल ने परमाणु पृथकीकरण का सिद्धांत रखा। इसका अर्थ है कि वे अपने हथियारों का अपने तरीके से निर्माण करने के पक्ष में हैं, और अपने को इस समय हो रहे किसी भी समझौते से अलग रखना चाहते हैं। यदि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती हैं, तो विशेषतः अविकसित तथा ऐसे देश जो पहले उपनिवेश थे, को इस बात की शंका है कि औपनिवेशिक युद्धों में परमाणु हथियारों का प्रयोग किया जाएगा। क्योंकि न तो रूस और न ही संयुक्त राज्य अमरीका किसी को लूटमार की सजा देने के उद्देश्य से विश्व युद्ध में संबद्ध होना पसंद करेंगे।

इसलिए, इस बात की आशंका है कि अगर ये हथियार और अधिक छोटे आकार के हो गए और बड़े पैमाने में उपलब्ध हुए, तो एक ऐसी विषम समस्या उत्पन्न हो जाएगी, जिसको काबू में लाना असंभव होगा। इसी कारण से यह कहना ठीक ही है कि आज निरस्त्रीकरण एक ऐसी समस्या है, जो हम सबके लिए चिंता की बात है, क्योंकि हमारा आर्थिक विकास और इस विश्व का अस्तित्व ही खतरे में है और हमारे लिए यह महसूस करना जरूरी है कि विश्व के विनाश के खतरे आदि के बारे में जो बातें होती हैं, वह केवल बौद्धिक चर्चा मात्र नहीं हैं, एक अमरीकी वैज्ञानिक के अनुसार एक परमाणु युद्ध का खतरा 4:1 के अनुपात में है। इसका तात्पर्य यह है कि परमाणु युद्ध का खतरा बहुत दूर की संभावना नहीं है, यह एक बहुत बड़ा खतरा है। मेरे विचार से हमें इस बात से प्रसन्न होना चाहिए कि अपने सीमित संसाधनों, सीमित ज्ञान और विश्व में अपने सीमित प्रभाव के बावजूद, हमने पिछले कई वर्षों से इस दिशा में कुछ योगदान किया है।

6

संयुक्त राष्ट्र संघ से कश्मीर मामले का वापस लिया जाना*

गैर सरकारी सदस्यों के समय के अंदर इस प्रस्ताव के आने से शायद यह धारणा बन सकती है कि समस्या की गंभीरता से इसका कोई संबंध नहीं है। मगर, हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि चाहे यहां हम कितनी ही कम संख्या में क्यों न हों, हमारे वाद-विवाद को विश्व के अनेक देशों में असंख्य लोगों द्वारा सुना जा रहा है और हमारे इस वाद-विवाद का संदेश पूरे विश्व तक पहुंच रहा है, खासकर विश्व के शक्तिशाली देशों में।

श्री तारिक के इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने से हमें इस समस्या की गंभीरता के बारे में सोचने का एक मौका मिला है। यह समस्या तब तक ज्वलंत रूप में हमारे सामने रहेगी, जब तक पाकिस्तान कश्मीर क्षेत्र से अपने आक्रमण को समाप्त नहीं करता, क्योंकि इस मामले में जो प्रश्न अंतर्ग्रस्त है, वह इस देश की प्रभुसत्ता का है। यही मूलभूत मुद्दा है।

हमारे सामने पेश किए गए इस संकल्प में हमसे यह कहा गया है कि हम अपनी शिकायत या अपने उल्लेख को सुरक्षा परिषद से वापस ले लें। उपाध्यक्ष महोदय, मैं बड़े सम्मान से यह कहना चाहता हूं कि इस उपाय को अपनाने का सुझाव देने के लिए प्रस्तावक की जो आलोचना की गई, वह गलत है, मगर इसके लिए जो कारण दिए गए हैं, वे और भी खराब हैं। सुरक्षा परिषद से हम अपनी शिकायत को वापिस नहीं ले सकते, इसके केवल तकनीकी कारण नहीं हैं, क्योंकि यदि कारण केवल तकनीकी होते, तो हम उन्हें दूर कर सकते थे। मगर जो कारण हैं वे हमारी विदेश नीति, अंतर्राष्ट्रीय मसलों के बारे में हमारे दृष्टिकोण और सबसे अधिक हमारी सुरक्षा से संबंधित हैं।

कश्मीर के संदर्भ में कुछ मूल बातें हैं, इस चर्चा के दौरान काफी बातें कही गई हैं। चूंकि कुछ मसले उठाए गए हैं, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि संक्षेप में उनमें से कुछ बातों का जिक्र किया जाए।

सर्वप्रथम बात तो यह है कि जब सुरक्षा परिषद में यह मामला ले जाया गया तब

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 22 अप्रैल, 1960

वहां की जो ज्ञात परिस्थितियां थीं, वे परिस्थितियां उससे भिन्न थीं, जिनका बाद में पता चला। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय-6 विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के अंतर्गत हमने सुरक्षा परिषद में अपनी शिकायत दर्ज कराई थी। क्योंकि उस समय हमें इस तथ्य की जानकारी नहीं थी कि पाकिस्तानी सेना ने इस मामले में हस्तक्षेप किया है, कम से कम, सरकारी स्तर पर हमें इसके बारे में जानकारी नहीं थी। उस वक्त वहां अनेक पाकिस्तानी नागरिक थे और उन्हें पाकिस्तान की ओर से हर तरह का बढ़ावा और मदद दी जा रही थी; मगर एक स्थापित राष्ट्र की तरफ से दूसरे राष्ट्र पर हमला किए जाने की स्थिति नहीं थी।

दूसरी बात यह है कि हमारी एक इच्छा यह थी कि इस विवाद को बढ़ने से रोका जाए। मैं यहां यह भी कहना चाहूँगा कि लार्ड माउण्टबैटन द्वारा इस मामले में अपनाए गए अहितकारी रवैये के बारे में भी उल्लेख किया गया है। यह न सिर्फ लार्ड माउण्टबैटन पर बल्कि इस देश पर आक्षेप है। उस वक्त हमारा देश एक स्वशासी डोमिनियन था और राज्य प्रमुख के रुप में मंत्रियों द्वारा दी गयी सलाह के अनुरूप कार्य करना गवर्नर-जनरल के लिए अनिवार्य था। इसलिए, यदि हम लार्ड माउण्टबैटन को जिम्मेदार ठहराते हैं तो हम वस्तुतः अपनी सरकार और अपने प्रधानमंत्री पर ही दोषारोपण कर रहे हैं। परंतु, वस्तुतः जो आरोप लगाया गया है, वह निराधार है। राज्य के प्रमुख की हैसियत से लार्ड माउण्टबैटन की भूमिका, विलय को स्वीकार करने की थी। किन्तु, जो पत्र बाद में उनके द्वारा लिखा गया, उसमें लोगों की राय जानने के बारे में कुछ उल्लेख था, मगर इस बारे में मैं बाद में बात करूंगा।

इसलिए, इस बारे में मुख्य स्थिति कुछ इस प्रकार थीः हम सुरक्षा परिषद में जब शिकायत दायर करने गए, हमारे पास उस समय वस्तुःस्थिति के बारे में वह जानकारी नहीं थी, जो हमें बाद में मालूम पड़ी और इस अज्ञानता का कारण, हमारे तरफ से सतर्क नहीं होने से ज्यादा, दूसरे पक्ष का है, जिसने सच्चाई से हमें जानबूझकर बेखबर रखा। इस तरह जब पाकिस्तान ने लगभग पंद्रह दिन बाद, जब हमारे प्रार्थना-पत्र का जवाब दिया तो उन्होंने करीब 14 मुद्दे उठाए, और उनमें से सिर्फ एक कश्मीर के बारे में था, और अन्य जूनागढ़, हैदराबाद, नरसंहार, दो राष्ट्र के सिद्धांत और अन्य अनेक प्रकार के मुद्दे उठाए; जिनका इस मामले से कुछ लेना देना नहीं था। उनके लंबे चौड़े जवाब में कश्मीर के बारे में कोई खास जिक्र नहीं था, सिवाय दो पंक्ति के एक अनुच्छेद के जिसमें उन्होंने इस

बात का खंडन किया कि उन्होंने कश्मीर पर हमला किया है। अन्य मुद्दे असंगत हैं। अतः हमारी शिकायत का उन्होंने खंडन किया, जिसे बाद में संयुक्त राष्ट्र द्वारा नियुक्त किए गए प्रेक्षकों ने गलत पाया। इस प्रकार उनके खंडन को साबित करने के लिए कोई वैध तथ्य नहीं है।

यहां उल्लेख किया गया कि आक्रमण की शिकायत को संयुक्त राष्ट्र ने निराधार पाया। यह उस समर्थन को निष्फल करना है जो संयुक्त राष्ट्र के आयोग के निष्कर्षों से हमें प्राप्त हुआ है जबकि सर ओवेन डिक्सन ने यह कहा कि अमुक तारीख को, जिस दिन पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सीमाओं को पार किया और अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन किया। शायद यह घुमा फिराकर बात कहना है, मगर यह एक निष्कर्ष था कि पाकिस्तान द्वारा आक्रमण किया गया था।

*** *** ***

दूसरी बात यह है कि इससे दूर हटने में हमारी भलाई नहीं है। अब जिस समाधान का प्रस्ताव किया गया है, अगर उसे मान लिया जाए, तो यह सिरदर्द दूर करने के लिए सिर कटाने की मंजूरी देने के बराबर होगा। यह कोई समाधान नहीं है। इसलिए, संयुक्त राष्ट्र को हटाकर और अपना समर्थन देकर, भले ही हम बुरी तरह नुकसान की स्थिति में हों, उन नैतिक और अन्य जिम्मेदारियों को भुला देने के बराबर होगा, जो हमने स्वीकार की है। इससे हम उन शक्तियों से अपने आप को अलग कर देंगे, जो विश्व शांति, आपसी सहयोग और मानवता के विकास के लिए प्रयास कर रही हैं। न सिर्फ यह, बल्कि उन सब बातों से मुकर जाना होगा, जिनकी हमने संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष घोषणा की है। यह पूर्णतः सत्य है कि पाकिस्तान ने कश्मीर में अपने आक्रमण को समाप्त नहीं किया है यह भी सत्य है, जो अक्सर भुला दिया जाता है कि संयुक्त राष्ट्र ने अपने सभी संकल्पों में उस क्षेत्र पर हमारी प्रभुसत्ता को स्वीकार किया है, जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और क्योंकि इस देश में ऐसा कोई राज्य नहीं है; चाहे वह महाराष्ट्र 'गुजरात और केरल क्यों न हो, जहां अक्सर कानून और व्यवस्था की समस्या होती है, या बंगाल या पंजाब; ऐसा कोई भी राज्य नहीं है, जिसकी अपनी अंतर्राष्ट्रीय सीमा और सरहदें हों। जम्मू और कश्मीर की सीमाएं अरब सागर, बंगाल की खाड़ी और हिमालय की तलहटी हैं। संयुक्त राष्ट्र की घोषणा द्वारा इस बात को मान्यता दी गई है, जिसमें जम्मू और कश्मीर सरकार को प्रभुसत्ता की बात कही गई है और यह सरकार भारत के अन्य राज्यों की सरकारों

के समान है, जो भारतीय संविधान में की गई व्यवस्था और प्रावधान के अनुसार गठित किए गए हैं।

यह व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय कानून के द्वारा की गई। पाकिस्तान ने, हमने और ब्रिटेन की सरकार ने विभाजन के समय इसे स्वीकार किया। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून है।

दूसरे, यह लोगों की इच्छा है, जिसकी घोषणा उन्होंने संविधान सभा में की है। बाद में दो निर्वाचन हुए और वे लोग इनमें भाग लेने से वंचित रह गए जिन्हें बलपूर्वक रोका गया है। यदि वे इसके विरुद्ध मत देते, तो भी चुनाव में बहुमत घोषित इच्छा के पक्ष में जाता। इसलिए जनमत संग्रह का कार्य पूरा किया जा चुका है। मैं श्री साधन गुप्त द्वारा इस संबंध में उठाये गये प्रश्न का उत्तर देता हूं। उन्होंने कहा है कि हमने जनमत संग्रह का आश्वासन देकर गलती की है। हम अपने बारे में दूसरे लोगों के विचारों का सहर्ष स्वागत करते हैं। कभी-कभी हम उनकी बातों को स्वीकार भी करते हैं। दो या तीन साल पहले हमारे देश में कश्मीर और भारत के बारे में बात करना आम बात थी और ऐसे लगता था जैसे कि वे दो पृथक देश हैं। अब हम उस स्थिति को पार कर चुके हैं। इसी प्रकार, जब हम जनमत संग्रह आदि की बातें करते हैं तो इसका अर्थ है हम उन लोगों के विचारों को स्वीकार कर रहे हैं जो हमसे सहमत नहीं हैं। हमने बिना किसी शर्त के जनमत संग्रह करने के बारे में कोई वचन नहीं दिया। यह सच है कि हमने उसका उल्लेख किया है। हम राष्ट्रसंघ के इन प्रस्तावों से बंधे हुए हैं, वे प्रस्ताव हैं 13 अगस्त, 1948, 5 जनवरी, 1949 और 17 जनवरी के प्रस्ताव। केवल इन्हीं प्रस्तावों से ही भारत सहमत है। प्रत्येक प्रतिनिधि, चाहे मैं हूं या सरकार का कोई और प्रतिनिधि, सभी को यह अनुदेश था और सबने सुरक्षा परिषद के समक्ष यह कहा कि हम राष्ट्रसंघ के ऐसे किसी प्रस्ताव से बंधे हुए नहीं हैं जिन्हें हमने स्वीकार नहीं किया हो। हम सद्भाव से सुरक्षा परिषद् के निर्णयों का पालन करने की कोशिश कर सकते हैं, हम "सीटो" शक्तियों द्वारा इस आशय की घोषणा को तो रोक सकते हैं कि भारत उनके संरक्षण में है, परंतु हम सुरक्षा परिषद् को कोई प्रस्ताव पारित करने से नहीं रोक सकते।

अब मैं जनमत संग्रह की बात पर आता हूं। वहां जनमत संग्रह मंच और पता नहीं क्या-क्या चीजें हैं। राष्ट्र संघ में उनका दृष्टिकोण क्या रहा? हमने कुछ वर्ष पहले इसे कामचलाऊ के रूप में स्वीकार किया। कुछ वर्ष पहले एक प्रस्ताव था, जिसके तीन भाग थे। इसे हम षट्कोणी प्रस्ताव कह सकते हैं। एक भाग दूसरे भाग से जुड़ा हुआ है। दूसरा भाग तब काम करेगा जब पहले भाग का काम पूरा हो जाएगा तीसरे भाग पर भी वही बात लागू है। हमारा तर्क यह रहा है और मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि अब वह कम से कम संपरिवर्तनीय है और पहले भाग का कार्य पूरा नहीं हुआ है। पहला

भाग यह था कि जम्मू और कश्मीर में जितने भी पाकिस्तानी तत्व हैं, उन्हें वहां से अवश्य हट जाना चाहिए। उनका तर्क था कि वे वहां थे ही नहीं, और यह कहा गया कि तथाकथित आजाद गवर्नमेंट में स्थानीय पुलिस कार्ये के लिए आवश्यक लोगों को छोड़कर शेष सभी बलों को वहां से हट जाना चाहिए। जिस समय यह प्रस्ताव पारित हुआ था, राज्य का उत्तरी क्षेत्र आजाद गवर्नमेंट के अधीन नहीं था और वस्तुतः पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनका उस पर कोई नियंत्रण नहीं है। अतः वह समूचा क्षेत्र जो अब हमारे लिए, देशवासी जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक, महत्वपूर्ण है जैसे बाल्टिस्तान, गिलगिट, चित्राल का समूचा क्षेत्र, चीन और रूस के साथ लगी सीमा और ऐसे और क्षेत्र, कभी भी आजाद कश्मीर का भाग नहीं थे। वे क्षेत्र पहले भी और अब भी जम्मू और कश्मीर की प्रभुसत्ता के अधीन हैं।

अतः जब यह प्रस्ताव पारित हुआ था तब पाकिस्तान सरकार इन सब बलों को हटाने पर सहमत हो गई थी। परंतु उन्होंने इन ताकतों को नहीं हटाया अपितु उसमें भारी वृद्धि कर दी। इसलिए, पहले भाग का कार्य जब पूरा नहीं हुआ है, तो दूसरा भाग आरंभ ही नहीं हो सकता। यह हमारा तर्क है।

*** *** ***

इन फौजों को हटाने के साथ-साथ पहले भाग में यह बात भी थी कि दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए कोई ऐसी स्थिति पैदा नहीं करेंगे जिससे हम दोनों के बीच अशांति पैदा हो। अतः जब उन्होंने यह सब आंदोलन जोसोखरोस के साथ शुरू किये और जब उन्होंने भाषण देना शुरू कर दिया कि वे "जेहाद" छेड़कर हमारे देश पर आक्रमण करेंगे, तो उन्होंने पहले भाग में उल्लिखित शर्तें तोड़ दी हैं।

अतः जब तक पाकिस्तान एक सभ्य राष्ट्र की तरह बर्ताव नहीं करता और हमारे विरुद्ध टकराव से नहीं बचता तथा मनोवैज्ञानिक युद्ध को नहीं रोकता और सीमा पंर तैनात हमारी सेना को उकसाना बंद नहीं करता, जैसाकि वह अब तक करता आया है, तब तक पहले भाग की शर्तें पूरी नहीं होंगी। इस मामले में मुझे कोई दुराग्रह नहीं है। 13 अगस्त को पारित प्रस्ताव का पहला भाग अभी तक अधूरा है। बल्कि इसका उल्लंघन किया गया है और अब तक दूसरे भाग का काम शुरू नहीं हुआ है।

यद्यपि पहले भाग की शर्तें पूरी नहीं हुई, दूसरे भाग की शर्तों के अधीन पाकिस्तान को उसकी तथाकथित आजाद आर्मी के 32 बटालियनों की पूरी सेना को हटाना पड़ेगा, जिनकी तैनाती संभवतः युद्ध विराम की घोषणा किये जाने और इन समझौतों का प्रारूप तैयार हो जाने के बाद की गई। उन्हें हटाने के बाद ही दूसरी बातों पर विचार किया जाएगा।

तब, दूसरे भाग में क्या है जिसे हमने पूरा करने का वचन दिया है। हमने कहा था कि हम कुछ ठिकानों से अपनी सेनाएं हटा लेंगे। मुझे विश्वास है कि जब मैं यह कहता हूं कि यहां आज भी जम्मू और कश्मीर में भारतीय सशस्त्र सेना के सैनिकों की संख्या युद्ध विराम के समझौते में निश्चित किये गये सैनिकों की संख्या से कम है, तो मैं देश की सुरक्षा को खतरा नहीं पहुंचा रहा हूं। हमारे देश ने इस समस्या के प्रति यही शांतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है।

मान लीजिए कि दूसरे भाग की शर्तें भी पूरी कर दी गई हैं, तो हमने तीसरे भाग में क्या कहा है? हमने तीसरे भाग में जनमत संग्रह के बारे में कभी भी कुछ नहीं कहा है। हमने इतना ही कहा कि हम पाकिस्तान सरकार के साथ कुछ तरीकों के बारे में चर्चा करेंगे उनमें से कुछ तरीकों को एक किस्म की रचनात्मक योजना के रूप में 5 जनवरी के प्रस्ताव में रखा गया। यह जनमत संग्रह की पेशकश नहीं थी। वस्तुतः ऐसे अनेक दस्तावेज हैं जिन्हें आप विदेश मंत्रालय से प्राप्त कर सकते हैं, जिनमें राष्ट्रसंघ ने स्वयं कहा है कि जनमत संग्रह लोगों की राय जानने का केवल एक तरीका मात्र है। अतः बार-बार दोहराये जाने के कारण लगभग "धर्मोपदेश" बन जाने वाले इस जनमत संग्रह के बारे में हमने कोई वचन नहीं दिया है। यदि यह कोई वचनबद्धता थी तो सशर्त वचनबद्धता थी। इसमें शर्तों के तीन या चार चरणों को पूरा करना आवश्यक था जो न केवल पूरे नहीं किए गए अपितु इसके विपरीत कार्य करके इसका उल्लंघन किया गया है।

अतः जब हम संयुक्त राष्ट्र संघ में गए तो हमने इस संकल्प का समर्थन इसलिए किया क्योंकि हम युद्ध के क्षेत्र को सीमित करना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट प्रयोजन को प्रोत्साहन मिले।

दूसरे हमें यह याद रखना चाहिए कि हम किसी भी विवाद को लेकर संयुक्त राष्ट्र में नहीं गये। हमारे अनुसार कश्मीर का क्षेत्र निर्विवाद है। कश्मीर का क्षेत्र उतना ही निर्विवाद है जितना उत्तर प्रदेश का क्षेत्र है। चार्टर की शर्तों के अनुसार, सुरक्षा परिषद के सामने एक "स्थिति" है जो "विवाद" से एक दम अलग बात है। और इससे बड़ी बात यह है कि चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद को वैधानिक विवादों में न्याय निर्णय करने का अधिकार ही नहीं है। अगर हम उसके कार्यक्षेत्र को मान लें तो यह विश्व न्यायालय का कार्य हो सकता है परंतु चार्टर की शर्तों के अनुसार सुरक्षा परिषद में वैधानिक मसलों का हल नहीं निकाला जा सकता। इसलिए, अगर वह विवाद है तो वह या तो सीमा विवाद होगा या वैधानिक विवाद होगा। अगर वह सीमा संबंधी विवाद है तो उसका समाधान ऐसे शांतिपूर्ण समझौते की शर्तों के अनुसार होना चाहिए जिसमें दोनों ही पक्षों की सहमति हो। इसलिए हम कोई भी विवाद संयुक्त राष्ट्र में नहीं ले गए हैं इसलिए हमने एक ऐसी

स्थिति का उल्लेख किया है—मुझे चार्टर की संबंधित धारा का ध्यान नहीं रहा है—जो विश्व शांति के प्रतिकूल थी, जो दो देशों के संबंधों को बिगाड़ रही थी और किसी मामले को और अधिक उलझा भी सकती थी।

तीसरी बात याद रखने की यह है। शायद सदन पर इस बात का बहुत ज्यादा असर नहीं पड़ेगा परंतु वह इस स्थिति से और संयुक्त राष्ट्र के लोगों से भलीभांति परिचित हैं। पिछले कुछ सालों से हमारे देश की छवि को कई मसलों पर संसार की नजरों में धूमिल किया जाता रहा है। हम पर नर संहार का आरोप लगाया गया है, उदाहरणतः हम पर उन अल्पसंख्यकों के साथ दुर्व्यवहार करने का आरोप लगाया गया है जो काश्मीर में बहुसंख्यक हैं। और इससे भी बड़ी बात यह है कि भारत की मुस्लिम आबादी को मैं आशा करता हूं कि देश की मुस्लिम जनसंख्या, यदि वे स्वयं को इस देश से अलग मानते हों तो इस पर विचार करेगी। हम पर आरोप लगाया गया कि हमने भारत की मुस्लिम जनसंख्या को 6 करोड़ लोगों को बंधक बनाया हुआ है। तो यह तीसरी बात भी हमें याद रखनी होगी।

चौथी बात यह है कि सुरक्षा परिषद के प्रति इस सदन का तथा पूरे देश की नाराजगी बिल्कुल उचित है क्योंकि सुरक्षा परिषद, जिन ग्यारह देशों से मिलकर बनी है उनमें अधिकतर देशों का संविधान सत्य तथा स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित है। ये वे राष्ट्र हैं जिन्होंने हमले को रोकने का प्रयास ही नहीं किया।

हमने सुरक्षा परिषद से कहा है कि 40,000 से लेकर 42,000 वर्ग कि॰ मी॰ तक का हमारा क्षेत्र विदेशी कब्जे में है। मुझे विश्वास है कि एक और बात है जो पूरी तरह से महसूस नहीं की गयी है। वह यह है कि इन क्षेत्रों पर पाकिस्तान ने कब्जा कर लिया है। उनके संविधान की धारा 1 उप-धारा (2) के अनुसार उनका दृष्टिकोण है कि यह कानूनी है पर हमारा दृष्टिकोण है कि यह गैर-कानूनी है। उन क्षेत्रों पर पाकिस्तान ने कब्जा कर लिया है। परंतु हम इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि उन क्षेत्रों से हमारी प्रभुसत्ता हट गयी है। इससे बड़ी बात यह है कि हमारे संविधान और सुप्रीम कोर्ट के हाल के निर्णय के अनुसार देश की कोई भी सरकार बिना संवैधानिक संशोधन किये, जम्मू और कश्मीर की सीमाओं को बदल नहीं सकती क्योंकि यह हमारे प्रभुसत्ता संपन्न क्षेत्र के भाग हैं और संविधान में संशोधन किये बिना हमारी राष्ट्रीय सीमा को बदला नहीं जा सकता। अतः इस बात को बिल्कुल स्पष्ट किया जा चुका है। इसलिए मंगला बांध के संबंध में श्री तारीक की उत्तेजना स्वाभाविक ही है। परन्तु मेरे विचार से उनकी यह उत्तेजना एक दम अनावश्यक है क्योंकि इस देश में कोई भी सरकार—अव्वल तो वह चाह ही नहीं सकती और अगर चाहे तो भी

सीमाओं में परिवर्तन नहीं कर सकती। हमारे संविधान में संशोधन के बिना ऐसा हो ही नहीं सकता।

यह कहा गया है कि हम इस मामले में उचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। आखिर ऐसा हमने किया भी क्या है जिससे लगता है कि हमारा देश पीछे चला गया है? वर्तमान स्थिति के बारे में प्रश्न भी पूछे गए हैं। सबसे पहले, मैं कहना चाहूंगा कि वर्तमान स्थिति यह है कि हमारे प्रभुसत्ता सम्पन्न क्षेत्र में दो प्रशासन कार्यरत हैं: एक तो भारत का नागरिक प्रशासन काम कर रहा है तथा जम्मू और कश्मीर की सरकार जो वास्तव में किसी और राज्य की सरकार की तरह ही है, तथा दूसरा वास्तविक प्रशासन है जो हमारी प्रभुसत्ता का उपयोग करने के प्रतिकूल है जिसे आज़ाद सरकार कहा जाता है और सम्भवतः इन पहाड़ी राज्यों में कुछ इस तरह की सैद्धान्तिक सरकारें हैं। यह वास्तविक स्थिति है; और इन्हें हमने बलपूर्वक अपने साथ नहीं रखा हुआ है बल्कि ये स्वेच्छा से ही हमारे साथ हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत उस समझौते में एक पार्टी था जिसने इस युद्ध विराम वार्ताओं की शुरूआत की थी और हमने ऐसे समय पर बातचीत की जब जैसा कि किसी ने कहा भी है कि हमें युद्ध में विजय की आशा भी थी। सही रूप में या गलत रूप में, मेरा विचार है सही रूप में, हमारा यह मत है कि सशस्त्र सेना का विजयी होना ही काफी नहीं है बल्कि किसी समझौते पर पहुंचना भी आवश्यक है। युद्ध विराम रेखा के दोनों ओर संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षक हैं और अनेकों मामलों में उन पर्यवेक्षकों के कार्य निष्पादन के बारे में जो कुछ मैं महसूस करता हूं उसका उल्लेख करना मेरे लिये किसी प्रकार भी उचित नहीं होगा। उस पर्यवेक्षक दल में कई देशों के लोग हैं और मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि उनमें बहुत से ऐसे देशों के हैं जो सैनिक गुटों से सम्बन्धित हैं और उन पर्यवेक्षकों का काम युद्ध विराम रेखा के उल्लंघन की जानकारी देना है। इन उल्लंघनों के बारे में शिकायतें संबंधित पक्षों द्वारा की जाती हैं और यदि आप इन पर्यवेक्षकों के कार्य को ध्यान से देखें तो आप महसूस करेंगे कि उनका कार्य एक स्कोर-बोर्ड तैयार करना है। अर्थात् उनका लक्ष्य समानता दिखाना भर है। मैं जो कुछ कह रहा हूं हो सकता है उसकी आलोचना की जाये, परन्तु उनका काम स्कोर बोर्ड तैयार करना ही प्रतीत होता है। असल में हमने पाकिस्तान के विरुद्ध सैकड़ों शिकायतें की है। इस समय मुझे उनकी सही संख्या याद नहीं आ रही है, शायद, यह संख्या 1,028 हो, और उन्होंने हमारे विरूद्ध 870 शिकायतें कीं है। परन्तु वर्षों से ही ये आंकड़े उन्होंने हमेशा बराबर ही दिखाये हैं, बल्कि कुछ हद तक हमारे विरुद्ध दिखायें हैं।

यह युद्ध-विराम रेखा सशस्त्र सेना के नियंत्रण में नहीं है बल्कि पर्यवेक्षकों के नियंत्रण में है और एक ऐसे कानून के द्वारा, नियंत्रित होती है जो वास्तव में हमारे विरुद्ध है क्योंकि हम अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का ईमानदारी से पालन करते हैं, अर्थात् उस रेखा से पांच मील की दूरी तक सशस्त्र सेना नहीं आ सकती, जिसके कारण हमला होने पर हम कोई

कदम नहीं उठा सकते। क्योंकि हमारी सशस्त्र सेनाओं को वहां जाने से रोक दिया गया है; क्योंकि सेनाओं के वहां जाने से सीमा रेखा का उल्लंघन हो जायेगा। युद्ध विराम रेखा की स्थिति यह है। इस स्थिति के बारे में मैं कोई शिकायत नहीं करना चाहता। जितना हमसे हो सकता है उतना हम कर रहे हैं।

* * *

शांति का स्वरूप वहां सापेक्ष है। जम्मू और कश्मीर की समस्या का हल देश के औद्योगिक और आर्थिक विकास तथा देश की एकता को बनाए रखने पर ही निर्भर करता है। इस तरह से राजनैतिक तथा सामाजिक संतुलन ऐसा बन जायेगा कि युद्ध विराम रेखा के दूसरी तरफ रहने वाले लोगों के लिए भारत में मिलने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जायेगा।

हमारे लिये यही बेहतर होगा कि हम ऐसी नीति का अनुसरण करें जिससे कि हमारे द्वारा किये गये समझौतों के उल्लंघन का कोई भी प्रयास हमारी ओर से न होने पाये। हमने सुरक्षा परिषद् को बता दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत हमने जो भी समझौते किए हैं हम उनका पालन करेंगे। हम किसी भी ऐसे समझौते को केवल इसलिये ही नहीं माने लेगें क्योंकि कोई दूसरा यह कहता है कि हमने समझौतों को स्वीकार किया है। दूसरे, हमने यह भी स्पष्ट किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के कुछ सिद्धांतों का पालन होना ही चाहिए जैसे कि अगर दो व्यक्तियों में समझौता होता है तो उसकी व्याख्या में उस व्यक्ति का पक्ष लिया जाना चाहिए जिसके ऊपर इस समझौते के कार्यान्वयन की ज्यादा जिम्मेदारी है।

इसलिए, इन सभी मामलों में एक अलग रुख अपनाने की आवश्यकता है। पर यह सब देश के लोगों की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है। हमको यह नहीं भूलना चाहिए कि कुछ समय पहले ही—13 साल पहले—इस देश पर, देश के इस हिस्से पर विदेशी हमला हुआ था सबसे पहले 2.5 लाख रजाकरों ने हमला किया था और कुछ दिनों तक भारतीय सेना की सिर्फ एक टुकड़ी ने ही उन रजाकारों का मुकाबला किया था और उस हमले में सेना के हमारे बहुत ही श्रेष्ठ अफसरों और जवानों को कश्मीर की भूमि पर अपने प्राण गवाने पड़े थे। हम उनके आभारी हैं यह सुनिश्चित करना हमारा दायित्व है कि इससे भी बढ़कर बात यह है कि इस मामले में हमारी तरफ से अब और किसी प्रकार की लापरवाही न होने पाये।

कश्मीर हमारे लिए ज्वलंत मसला है क्योंकि यह हमारे देश का एक हिस्सा है। इसलिए नहीं कि यह भूमि का एक टुकड़ा है। बल्कि हमारे इतिहास हमारे संबंधों और हमारे लोगों का एक हिस्सा है। इस क्षेत्र का आर्थिक विकास, यहां के संसाधनों का विकास तथा एशिया महाद्वीप में अन्तर्राष्ट्रीय टकराव की स्थिति में किसी भी तरह की घुसपैठ रोकना इस बात पर निर्भर करता है कि सामरिक महत्व के इस क्षेत्र में हम अपना प्रभुत्व कितना और कैसे बनाए रख सकते हैं।

7

न्युक्लियर परीक्षण विस्फोट के संबंध में विश्व शक्तियों का सम्मेलन*

इस संकल्प की विषयवस्तु हमारी सरकार तथा लोगों के लिए एक गंभीर चिन्ता का विषय है और जो भी जानकारी हमें उपलब्ध है उसके अनुसार सारी दुनिया के लोगों के लिए भी यह बात चिन्ता की ही है। यह जो संकल्प पेश किया गया है, गैर सरकारी सदस्य का संकल्प है। सरकार उन उद्देश्यों का स्वागत करती है जो माननीय सदस्य के मस्तिष्क में हैं और मुझे आशा है कि कुछ संशोधनों के साथ जिन्हें संकल्प के प्रस्तावक सदस्य भी मान लेंगे। सरकार इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हो जायेगी। बाद में अपनी टिप्पणियों के दौरान इस पर चर्चा करूंगा।

इस संकल्प की परिधि और किन्हीं स्थानों पर प्रस्तुत किये गये संकल्प के ठीक विपरीत काफी सीमित हैं। इस संकल्प में इन अस्त्रों के केवल प्रयोगात्मक विस्फोटों अर्थात् परीक्षण विस्फोटों पर ही विचार किया गया है। परन्तु इन परीक्षणों को रोकने की पुनः मांग करने के बारे में सरकारी नीति का प्रयोजन इस आशय से सही है कि अणु तथा परमाणु युद्धों को रोका जा सके। अगर परीक्षण बंद हो जाते हैं तो इनका विकास भी रूक जाएगा और तब कम से कम नैतिक रूप से ही सही अस्त्रों की होड़ को रोकने में हमारा कुछ तो योगदान होगा ही।

सदन को याद होगा कि 4 अप्रैल, 1954 को अर्थात् तीन वर्ष पहले प्रधानमंत्री ने पहली बार घोर विनाशकारी अणु तथा परमाणु अस्त्रों के संबंध में एक स्थायी समझौते के लिए एक वक्तव्य दिया था। वह पहली सार्वजनिक अपील थी और तभी से इन परीक्षणों को रोकने की इच्छा एवं प्रयासों ने जोर पकड़ा है। चाहे यह निरस्त्रीकरण, परमाणु क्षेत्र में रहा हो या परम्परागत अस्त्रों के क्षेत्र में। आज विश्व की अनेक संसदों ने जैसे जापान तथा पश्चिमी जर्मनी की संसदों ने और अलग-अलग व्यक्तियों तथा सुविख्यात वैज्ञानिकों और अन्य लोगों द्वारा शुरू किए गए विशाल आंदोलनों द्वारा की गई एक अपील में इन विस्फोटों को अनावश्यक करार दिया गया और इस अपील में यह भी बताया गया कि ये कैसे अस्त्रों की दौड़ को प्रोत्साहित करते हैं और इससे भी बड़ी बात यह है कि ये

*राज्य सभा वाद विवाद, 24 मई, 1957

विस्फोट स्वयं में ही खतरनाक होते हैं। हानि तो बहुत ही और भी बड़ी बात यह है कि अप्रत्यक्ष हानि तो बहुत ही अधिक होगी।

जब 1919 में लार्ड रदरफोर्ड ने प्रयोगशाला में नाइट्रोजन अणु का विस्फोट किया था तो उन्होंने यह कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि कभी परमाणु शक्ति का प्रयोग व्यापक रूप से विनाश के लिये किया जाएगा। उन्होंने तो यही सोचा था कि इसका प्रयोग सामान्यतः भौतिकी और विज्ञान के प्रोत्साहन के लिये ही किया जायेगा और उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि इसका प्रयोग भीषण विनाश के लिए किया जाएगा। परन्तु इसका विकास पहले ब्रिटेन, फिर जर्मनी और उसके बाद अमरीका में हुआ और इसका विकास अमरीका में इस सीमा तक हुआ कि जुलाई, 1945 में अमरीका न्यू मेक्सिको में अलामोगोरडो में प्रथम अणु बम का विस्फोट कर दिया। वह अणु अब आधुनिक बमों की तुलना में काफी कम शक्तिशाली था। उसकी विध्वंशक शक्ति संभवतः एक महीने बाद जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी शहरों पर गिराए गये बमों से कम थी अनुमान किया जाता है कि उन बमों की विध्वंशक शक्ति 20,000 टन टी०एन०टी० थी। लेकिन आज उनको कोई सिर्फ बम ही नहीं मानता है क्योंकि उनकी क्षमता एक बड़े क्षेत्र को विनाश के कगार पर पहुंचाने के लिये काफी होती है। हिरोशिमा में करीब 1.15 लाख लोग मरे या घायल हुये थे तथा 3.65 लाख लोग प्रभावित हुए। पक्की इमारतों सहित शहर का काफी भाग जल गया, और उससे भी ज्यादा खतरनाक बात यह हुई कि जो बाद में वहां गए वे रेडेयेशन का शिकार हुए और उनमें से अनेकों मौत के मुंह में चले गये। नागासाकी में नुकसान कम हुआ जबकि वहां जो बम डाला गया वे ज्यादा शक्तिशाली था।

जब कोई सदन का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करता है कि आज के एक परमाणु बम की विनाशक शक्ति जिसे थार्मो न्यूक्लियर बम भी कहते हैं— विश्व की रचना के समय से लेकर अब तक जितने भी युद्ध हुये हैं और उनमें जो भी विस्फोटक इस्तेमाल किये गये हैं, उन सभी की कुल विस्फोटक शक्ति के बराबर है, तभी वे इन शस्त्रों की विनाशक शक्ति का अहसास कर सकेंगे। आज हाइड्रोजन बम का मूल्य संभवतः कुछ करोड़ रुपए है। इसका अर्थ है जन संहार के लिए प्रयुक्त होने वाले हथियारों का उत्पादन काफी किफायती हो गया है जो कि अपने आप में एक बहुत बड़ा खतरा है। हिरोशिमा में दो बम विस्फोटों के उपरान्त जो प्रगति हुई है वह हाइड्रोजन बम की प्रगति के रूप में जानी जाती है। हाइड्रोजन बम परमाणु बम से प्रज्वलित किया जाता है और इसको विस्फोट करने के लिए बहुत अधिक ताप की आवश्यकता होती है तथा यह कई मिलीयन डिग्री यहां तक कि सूर्य की गर्मी से भी कई गुणा ज्यादा ऊष्मा छोड़ता है।

अब उन्होंने एक अन्य प्रकार के हाईड्रोजन बम का भी प्रीक्षण किया है। उसकी तीन कार्यस्थितियां हैं— विखंडन, सम्मिश्रण तथा फिर विखंडन।

प्रो॰ भाभा ने 1955 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जेनेवा में आयोजित वैज्ञानिक सम्मेलन में भाषण करते हुए यह भविष्यवाणी की थी कि ऐसा समय जल्दी ही आएगा जब सम्मिश्रण की प्रक्रिया पर काबू पाया जा सकेगा तथा इसका प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किया जाएगा। शायद पिछले ही वर्ष कुछ सोवियत वैज्ञानिकों ने हारवेल में किसी परमाणु स्टेशन का दौरा किया तथा एक गुप्त सम्मेलन में इस दिशा में विकास पर विचार-विमर्श किया।

अतः अब मानव के पास एक ऐसा हथियार उपलब्ध है जिसके द्वारा न केवल मानव जीवन बल्कि सभी प्रकार के जीवन के अस्तित्व को नष्ट करना संभव है। फिर भी इसमें कुछ शंकाएं हैं। कुछ लोगों का विचार है कि मानव की अपना अस्तित्व बनाए रखने की इच्छाशक्ति इतनी दृढ़ है कि कुछ न कुछ अवश्य बच जाएगा, किन्तु यदि कुछ शेष भी रह जाता है तो रेडियेशन का प्रभाव इतना खराब होगा कि जो कोई भी बचेगा वह वास्तविक मानव जीवन जिस रूप में हम देखते हैं इस रूप में नहीं बल्कि एक विकृत, रोगग्रस्त मानव होगा जिसके दिमाग की शक्ति प्रजनन विकास से प्रभावित होगी तथा शरीर ल्यूकोमिया रोग से ग्रस्त होगा।

सबसे पहला तापनाभिकीय विस्फोट 1952 में किया गया। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यद्यपि विस्फोट 1952 में किया गया किन्तु काफी समय बाद तक भी विश्व को उसके खतरों के बारे में पता नहीं चला। सबसे अधिक प्रख्यात विस्फोट मार्शल टापुओं में प्रशान्त महासागर के द्वीपों के बिकनी क्षेत्र में किया गया। ये द्वीप ट्रस्ट टापुओं का भाग है तथा जहां पर संयुक्त राज्य अमरीका ने एक महत्वपूर्ण हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया।

1954 में बिकनी में किया गया विस्फोट इतना भयानक था कि घटना के लगभग 13 महीने उपरान्त भी जब जांच की गई तो ज्ञात हुआ कि एक मिलीयन वर्गमील तक पानी रेडियोधर्मिता के प्रभाव से प्रदूषित हो गया था। यह मुद्दा विस्फोट से सम्बद्ध है, किन्तु किसी को इसकी युद्ध में विध्वंसकारी शक्ति के संबंध में विस्तृत जांच करने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध के समय जो लोग इन बमों के कुछ मील तक की दूरी पर रहेंगे वे विस्फोट तथा ऊष्मा से प्रभावित होंगे। उसकी गर्मी उनको पूरी तरह जला देगी तथा विस्फोट अपनी तरह से सब कुछ नष्ट कर देगा। किन्तु जहां तक बिकनी में हुई जन-हानि का सवाल है, जब वहां विस्फोट किया गया था और विश्व को उसके प्रभावों की जानकारी मिली थी क्योंकि एक मछली पकड़ने वाली अभागी नौका जो "फार्चुनेट ड्रेगन" कहलाती थी और जो विस्फोट स्थल से लगभग एक सौ मील की दूरी पर थी, प्रभावित हुई। रेडियोधर्मिता का दुष्प्रभाव 23 मछुयारों पर पड़ा जिससे कि सारे विश्व का

ध्यान उस मुद्दे की ओर आकृष्ट हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ने प्रभावित लोगों को कष्टों से उबारने के लिए तथा उनके पुनर्वास के लिए बहुत कुछ किया। इस संदर्भ में मैं इन बिकनी परीक्षणों के विषय में एक उद्धरण देना चाहूंगा जो कि संयुक्त राज्य अमरीका की नेशनल एकेडमी आफ साइनसिज से लिया गया है। इसके अनुसार :

"1954 के परीक्षणों के दो दिनों के उपरांत बिकनी के निकट स्थित स्थानों पर सतही जल पर रेडियोधर्मिता का प्रभाव प्राकृतिक रेडियोधर्मिता के प्रभाव से लाखों गुणा अधिक पाया गया। इस द्रव्य को समुद्री धाराओं के द्वारा दूर पहुंचा दिया गया तथा इसके असर को कम कर दिया गया और चार महीनों के उपरांत प्राकृतिक धर्मिता के मुकाबले तीन गुणा अधिक गाढ़ा पदार्थ परीक्षण स्थल से 1,500 मील की दूरी पर पाया गया, 13 महीनों के बाद विकास मात्रा में प्रदूषित जल लाखों वर्गमील में फैल गया तथा उसकी कृत्रिम धर्मिता प्राकृतिक धर्मिता के मुकाबले $^{1}/_{5}$ भाग ही रह गई, किन्तु यह प्रभाव मुख्य स्थल से 3500 मील की दूरी पर भी देखा जा सकता था"।

अतः यह सत्य है कि रेडियोधर्मिता उत्तरोत्तर कम होती जाती है किन्तु इस दौरान यह आसपास के सारे इलाके में फैल जाती है। बिकनी में विस्फोट करने के उपरांत अन्य अनेक विस्फोट किए गए, और जहां तक हमारी जानकारी है, सारे विश्व में अब तक किए गए परमाणु और तापनाभिकीय विस्फोटों की संख्या 110 है जिनमें से 70 संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा, 30 सोवियत गणराज्य द्वारा तथा 10 ब्रिटेन द्वारा किए गए हैं, तथा ये परीक्षण साइबेरिया के मरुस्थलों में अथवा ऐसे ही किन्हीं स्थानों पर किए गए। जबकि सोवियत गणराज्य द्वारा ये परीक्षण अपनी विस्तृत सीमाओं के अंदर तथा अन्य परीक्षण समुद्रों में किए गए जोकि एशिया महाद्वीप के आसपास के क्षेत्र में ही हैं। ऐसा नहीं है कि हम एशिया के लोगों के लिए कोई खास अपील कर रहे हैं किन्तु बाद में एशिया के लोगों को विश्व के शेष लोगों की अपेक्षा अधिक नुकसान उठाना पड़ेगा जिसके कारणों की चर्चा मैं इस विषय में अपने विचार व्यक्त करते समय करूंगा।

कई प्रयत्न किए जाने के बावजूद भी हम इन विस्फोटों के स्थगन के विषय में कोई भी ठोस परिणाम हासिल करने में सफल नहीं हो पाए हैं। यह सत्य है कि अब इस विषय का मजाक उस तरह नहीं उड़ाया जाता जैसाकि तब उड़ाया जाता था जब 1954 में पहली बार इस प्रकार का सुझाव रखा गया था। वास्तव में यह एक विवाद का विषय समझा जाता है और मुद्दा है कितना, कब इत्यादि। भारत संयुक्त राष्ट्र के उन देशों में से एक है, जिनका संबंध निरस्त्रीकरण समस्या से है तथा भारत सरकार द्वारा पिछले कुछ वर्षों के दौरान निरस्त्रीकरण आयोग के सम्मुख कुछ सुझाव भी दिए गए हैं। जहां तक परमाणु समस्या का संबंध है, हमारे द्वारा हमेशा इसी बात पर जोर दिया जाता रहा है कि केवल

एक ही रास्ता है वह यह कि परमाणु तथा तापनाभिकीय हथियारों को या तो पूर्णतः नष्ट कर दिया जाना चाहिए और या उन पर पूर्ण पाबंदी लगा दी जानी चाहिए। इनको समुद्र में नहीं फैंका जा सकता बल्कि या तो इन्हें नष्ट किया जा सकता है या इनका प्रयोग अन्य कार्यों में किया जा सकता है। जहां तक इनके विस्फोट का संबंध है उसे स्थगित किया जाए क्योंकि इस पर प्रतिबंध लगाया जा रहा है। हमें इस बात का खेद है कि वे महाशक्तियां जिनके पास बम हैं हमारे पास तो नहीं हैं—उन्होंने इस संदर्भ में ऐसा विचार व्यक्त नहीं किया है। फिर भी, कुछ समय से ऐसे स्थगन को स्वीकार करने की ओर झुकाव बढ़ रहा है किन्तु तभी, जब दूसरा पक्ष इसे स्थगित करे। अब सवाल यह है कि पहल कौन करे।

संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी विभिन्न समितियों का यही विचार है कि किसी न किसी को इन विस्फोटों को रोकना पड़ेगा। सोवियत रूस के नेताओं ने हमारे प्रधान मंत्री के साथ मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य में इन बमों के विस्फोटों पर रोक लगाने की बात कही है और मैं पूरी तत्परता के साथ कहना चाहता हूं कि अगर वे इन विस्फोटों पर रोक लगाना चाहते हैं तो उन्हें इन पर रोक लगानी चाहिए। यह निशस्त्रीकरण के प्रति तुरन्त और सबसे बड़ा योगदान होगा।

बमों की संख्या में जाए बिना जहां तक उनके संचित भंडार के बारे में बात है उस विषय में प्रत्येक को यह पता है कि विश्व में अभी बमों की जो वास्तविक संख्या है वह मानवता को कई बार नष्ट करने में सक्षम है। इस प्रकार प्रत्येक देश के पास पर्याप्त विनाशकारी शक्ति है। परन्तु विश्व को दस बार नष्ट करने से क्या फायदा होगा? अतः पूर्णतया उपयोगितावादी दृष्टिकोण से इसका कोई फायदा नहीं है। इन विस्फोटों पर पूर्णतया रोक लगाने के विरोध में जो तर्क दिया जाता है वह इस अविश्वास पर आधारित है कि दूसरा कोई इनका प्रयोग कर सकता है। पिछले कुछ दिनों में, जबसे भारत ने इस समस्या पर ज़ोर देना प्रारंभ किया है, इस तर्क में यह भी जोड़ दिया गया है कि कुछ ऐसे विस्फोट भी हैं जिनका पता नहीं लग सकता है। इस पर हमने यह कहा कि ऐटम बम को कोई अपनी जेब में छुपाकर विस्फोट नहीं करा सकता है और उनका पता भी लग जाता है और वैज्ञानिक तथ्य इसकी पुष्टि करते हैं। यह सच है कि कुछ विस्फोट बड़े असाधारण तरीके के होते हैं। हमने अपराधियों के विरूद्ध भी कानून बना रखे हैं, उसके बावजूद भी कुछ अपराधी अपराध करते हैं। सभी देशों में जहां प्रेस को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

है, सरकार की नीति में विरूद्ध स्वतंत्र रूप से अत्यधिक विचार व्यक्त किए गए हैं। अमेरिका में परमाणु-वैज्ञानिकों के बुलेटिन के अनुसारः

"अब इस बात को सभी जानते हैं कि तापनाभिकीय अस्त्रों का परीक्षण दुनिया से छुपाकर नहीं किया जा सकता है, अतः इसकी समाप्ति को प्रमाणित करने के लिए अब अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण की आवश्यकता नहीं होगी, जो कि, 1945 में परमाणु शक्ति पर नियंत्रण के लिए शुरू की गई संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से हुई वार्ताओं के समय से ही पूर्व और पश्चिम के बीच विवाद का कारण बनी हुई है। अन्तर-महाद्वीपीय मिसाइल्स के परीक्षण का परीक्षण करने वाले देश से बाहर इतनी आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है। ....यद्यपि, बड़े देशों में स्थापित कुछ शक्तिशाली रडार केन्द्र संभवतया ऐसे परीक्षणों को छुपाना असंभव बना देंगे। अतः यह सुझाव दिया जा सकता है कि जैसे परमाणु शस्त्रों की तरह आई०बी०एमस० पर पूर्ण नियंत्रण, सिर्फ तकनीकी तौर पर तथा राष्ट्रीय प्रभुसत्ता में ज्यादा हस्तक्षेप किए बिना संभव है। शस्त्रास्त्रों की दौड़ को रोकने के लिए भी जो तरीका सुझाया गया है वह केवल संयुक्त राज्य अमेरीका और सोवियत रूस की इस इच्छा पर निर्भर करता है कि क्या वह ऐसा होने देना चाहते हैं न कि उन तकनीकी समस्याओं पर जो कि नियंत्रण करने या समाप्त करने के रास्ते में खड़ी हुई हैं।"

जहां तक इस संकल्प का सवाल है इसमें अगर कुछ परिवर्तन किए जाएं तो सरकार इसको स्वीकार कर सकती है। अर्थात पंक्ति 2 में दिए गए शब्दों की परमाणु परीक्षण के लिए विस्फोटों के स्थान पर यदि ये शब्द लगाये जायें "जनसंहार के परमाणु और तापनाभिकीय अस्त्रों के विस्फोटों", तो हम लोग इस संकल्प को स्वीकार कर सकेंगे। दूसरी पंक्ति के अंत में आए हुए शब्दों "सरकार को विश्व शक्तियों का एक सम्मेलन बुलाना चाहिए जिसमें इन विस्फोटों को रोकने के तरीकों पर विचार होना चाहिए" के स्थान पर ये शब्द लगाने चाहिए "और उन देशों की सरकारों से, जो ऐसे अस्त्र बनाती हैं और उनका परीक्षण करते हैं, अनुरोध करते हैं कि वे ऐसे परीक्षणों को, उन्हें पूरी तरह समाप्त करने तक लम्बित रखें।" इसके पीछे, अतिसाधारण कारण है। सर्वप्रथम, सरकार किसी ऐसे संकल्प में भागीदार नहीं बनना चाहती जिसमें परमाणु शस्त्रों के विषय में उल्लेख ही किया गया हो और दूसरा यदि हम इस तरह से विस्फोटों पर आपत्ति करने लगे तो यह गलत और वैज्ञानिक प्रगति के रास्ते में बाधा डालना होगा क्योंकि प्रयोगशालाओं में विज्ञान की प्रगति के लिए कई परमाणु और तापनाभिकीय विस्फोट किए जाते हैं। हमें इन जनसंहार के लिए शस्त्रों के परीक्षण पर आपत्ति है और इसलिए पहला परिवर्तन आवश्यक है।

जहां तक दूसरे संशोधन का प्रश्न है, मैं सरकार की स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहता

हूं। यह जो प्रस्ताव सदन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है, इसमें सरकार को विश्व शक्तियों का एक सम्मेलन आयोजित करने के लिए कहा गया है जिसमें इन विस्फोटों पर रोक लगाने के तरीकों पर विचार किया जाएगा। इस तथ्य के अलावा कि हमारी सरकार और हमारे देश के लोगों को किसी ऐसे सुझाव से बचना चाहिए कि इस विश्व के उत्तरदायित्व का भार हमारे कंधों पर है, यह हमारी नीति है कि इस प्रकार के कार्य को करने के लिए न हमारे पास उतनी शक्ति है और न ही उतनी योग्यता। इसके अलावा भी, यह मामला अब संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत है और उसके निष्ठावान सदस्य होने के नाते, चार्टर पर विश्वास करने और संयुक्त राष्ट्र के ढांचे को मजबूत करने के लिए यद्यपि हम सम्मेलन का अयोजन कर सकते हैं परन्तु जब तक यह साबित नहीं होता कि संयुक्त राष्ट्र वास्तव में यह चाहता है या हमारे लिए विकल्प प्रस्तुत करने के कुछ अन्य कारण हैं ऐसे सम्मेलन शांति तथा सहयोग सुनिश्चित करने तथा इस दिशा में प्रगति में सहायक नहीं होंगे। इन कारणों से हम चाहते हैं कि इन शब्दों को हटा दिया जाए और उसके स्थान पर इस मामले पर संबंधित सरकारों से एक अनुरोध किया जाए। आज इस मामले से तीन सरकारें संबंधित हैं और वे हैं संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस और ब्रिटेन की सरकारें। हमारी सरकार का विचार है कि एक सरकार ने भी अगर समझौते या एकतरफा कार्यवाही के द्वारा इन परीक्षणात्मक विस्फोटों को रोक दिया, तो यह निःशस्त्रीकरण, विश्व सहयोग और विश्व शांति की दिशा में बहुत बड़ा योगदान होगा। जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा है, हमारे लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली सदन की ओर से की गई यह अपील इस तरह तैयार हो रहे जनमत को गति प्रदान करेगा। इसके साथ ही हम ऐसे किसी विकल्प के पक्ष में नहीं हैं जो परीक्षणों की रोक में कुछ रियायत देता हो और वह विकल्प इन परीक्षणों का एक परिसीमन और पंजीकरण हो। जहां तक कनाडा और जापान द्वारा अब प्रस्तुत किये गये प्रस्तावों का संबंध है और जो मूलतः ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें कहा गया है कि इन परीक्षणों की एक सीमा होनी चाहिए और इनका राष्ट्र संघ में पंजीकरण होना चाहिए हमारी राय के अनुसार यह एक ऐसा कदम है जो हमें पीछे की ओर ले जाता है क्योंकि परीक्षणों पर रोक का मुख्य उद्देश्य, यदि यह वास्तविक लक्ष्य है तो, यह है कि आप दूसरे पक्ष की सद्भावना पर निर्भर नहीं रह सकते और न ही आप इनका निरीक्षण या नियंत्रण कर सकते हैं। यही शर्त परिसीमन पर भी लागू होती है। अतः यह व्यवाहारिक नहीं होगा। दूसरे संभवतः इन विस्फोटों का सयुंक्त राष्ट्र संघ में पंजीकरण करना, इनको एक ऐसी मान्यता प्रदान कर देना है जिससे परमाणु युद्ध मानवता की अन्तरात्मा को स्वीकार्य हो जायेगा। इन्हीं कारणों से हमने यह संशोधन किया है। यह ऐसा मामला नहीं है कि सरकार इस संबंध में अपना अतिवादी रूप अपनाये अर्थात या तो "सभी कुछ होगा या कुछ भी नहीं होगा।" किन्तु सरकार किसी

ऐसी स्थिति का भी समर्थन नहीं करना चाहती है जिससे स्थिति ही उलट जाये। यदि इन सुझावों को स्वीकार कर लिया जाये तो सरकार उस संकल्प का स्वागत करेगी।

8

शिक्षा संस्थाओं में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण*

सभा के समक्ष एक संकल्प और इसमें प्रस्तावित कुछ संशोधन हैं। चूंकि हमारा सदन एक विधायी कक्ष है इसलिये इस सदन के सामने प्रस्तुत किये गये किसी भी विषय की अवमानना करना असंभव होगा, किन्तु साथ ही साथ मुझे इस तथ्य का ध्यान भी रखना है कि यह कोई विधेयक नहीं है बल्कि एक विशेष विचार व्यक्त करने वाला एक संकल्प है अतः इस संकल्प को इसके शाब्दिक अर्थों में नहीं समझा जाना चाहिए। यदि कोई केवल इस संकल्प में उल्लिखित आशय को ही ध्यान में रखे तो किसी भी सरकार को इसे स्वीकार करना संभव नहीं हो पायेगा क्योंकि इसमें कहा गया है कि "शिक्षा संस्थानों में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण लागू किया जाये", संभवतः इसमें बालकक्षायें भी शामिल हों क्योंकि शिक्षा संस्था में हर वह स्थान सम्मिलित है जहां शिक्षा दी जाती है अथवा यदि आप इसका अर्थ थोड़ा सीमित करना चाहें तो संभवतः हर वह संस्था जहां सार्वजनिक कोषों से धन प्राप्त होता है या हर वह संस्था जो शिक्षा मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आती हो। अतः यह इतनी अस्पष्ट धारणा है कि यदि इसका पूरी तरह से पालन किया जाये तो यह बिल्कुल निरर्थक हो जायेगी। किन्तु मेरा विचार है कि सरकार और सदन दोनों के लिए ही यह अच्छा होगा कि वे इस संकल्प में अंतर्निहित आशय को समझें। मैं यह कहना चाहता हूं कि हम इसके पुरः स्थापन का स्वागत इसलिये करते हैं क्योंकि इससे सभा का ध्यान इस मामले के कुछ पहलुओं की ओर तो आकर्षित हुआ ही है। संशोधनों के संबंध में बाद में चर्चा करूंगा।

सरकार इस संकल्प को यथास्थिति में अथवा कुछ थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ स्वीकार करने में असमर्थ है। सभापति महोदय जैसा कि आपने स्वयं ही संकेत दिया था कि कुछ हद तक हमारा वाद-विवाद अपने विषय से बहुत दूर हट गया है और माननीय सदस्यों के मस्तिष्क में यह धारणा बन गई है कि किसी न किसी रूप में अनिवार्य सैनिक भर्ती होगी ही। सबसे पहले मेरा यह कहना है कि मान लो हम इसका शाब्दिक अर्थ न

*लोक सभा वाद-विवाद, दिनांक 12 फरवरी, 1960

लेकर इसे इस सुझाव के रूप में मानें कि कालिज जाने वाले आयु के लड़के सैनिक सेवा के अंतर्गत आने चाहिएं तो फिर इस मसले पर विचार करने के अनेकों उपाय हैं। विश्व में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां शिक्षा संस्थानों में अनिवार्य सैनिक शिक्षा लागू की गई हो। आप यह शिक्षा कालेज के विद्यार्थियों तक सीमित रख तो सकते हैं किन्तु शिक्षा संस्थान इस प्रकार से सैनिक शिक्षा को अपने पाठ्यक्रम का अंग नहीं बना सकते।

अब यह प्रश्न भी उठता है कि यदि संसद अथवा देश अथवा जनमत आदि सैनिक प्रशिक्षण अनिवार्य बनाने के पक्ष में ही है तो इसे कालेज जाने वाले विद्यार्थियों तक ही क्यों सीमित रखा जाए या यों कहिये कि इससे अन्य लोगों को क्यों अलग रखा जाए? क्या वह विद्यार्थी जो कालेज नहीं जाते हैं अथवा ग्रामीण लोग देश-भक्त नहीं होते या इनमें अनुशासन सीखने की क्षमता कम होती है या उनके लिए अनुशासन की कम आवश्यकता होती है? क्या देश की स्थिरता अथवा प्रगति के लिए तथा अन्य उद्देश्यों के लिए आपातकाल में उनकी जिम्मेदारी कम होती है?

* * *

यदि इसका उद्देश्य राष्ट्रीय चरित्र एवं अनुशासन का निर्माण करना है और यदि राष्ट्रीय चरित्र और अनुशासन हथियारों की नोक पर लाया जाता है तो वह दिन देश के लिए बहुत दुखद होगा। यदि हम 'अनुशासन' शब्द को 'सैन्यवाद' के पर्याय के रूप में प्रयोग करेंगे तो वह दिन राष्ट्र के लिए बहुत दुखद दिन होगा। हम देश के युवाओं के सैन्यीकरण के इच्छुक नहीं हैं। और यही कारण है कि राष्ट्रीय कैडेट कोर जो कि एक बहुत बड़ा संगठन है और यह हमारी सशस्त्र सेना (थलसेना) क निर्देशन एवं मार्ग-प्रदर्शन के अंतर्गत होने के बावजूद अभी भी शैक्षणिक कार्य है और हम इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उनका शैक्षणिक पाठ्यक्रम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से प्रभावित न हो। यह एक सामान्य पृष्ठभूमि है जिसे मैं प्रस्तुत करना चाहता था।

अधिकतर वाद-विवाद में राष्ट्रीय कैडेट कोर को, जिसके संबंध में रक्षा मंत्रालय की स्वयं की या दूसरों के सहयोग से क्या जिम्मेवारी होनी चाहिए, के बारे में हुआ है। 1948 से पूर्व इस देश में इस तरह के संगठन में युवकों और युवतियों को भाग लेने की अनुमति नहीं थी। संसद ने एक विधान पारित करके 1948 से राष्ट्रीय कैडेट कोर की स्थापना की और तत्पश्चात 1949 में इसे मूर्तरूप प्रदान किया। यह कहा गया कि रक्षा मंत्री ने राष्ट्रीय कैडेट कोर के विकास में कोई योगदान नहीं दिया। यदि हम आंकड़े देखें तो पायेंगे कि पिछले तीन वर्षों में एन॰सी॰सी॰ की संख्या में 95% अर्थात लगभग दुगुनी वृद्धि हुई है। आज एन॰सी॰सी॰ के सीनियर डिवीजनों में लगभग 1,10,000 लड़के और लड़कियां हैं। माननीय सदस्य बुरा न मानें तो मैं इनमें से लड़कियों की संख्या अलग कर

देता हूं क्योंकि लड़कियां शस्त्र नहीं उठातीं। तो भी हमारे यहां 98 से 99 हजार सीनियर कैडेट हैं, जिन्हें तीन वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त है और वे सभी मायने में नहीं तो कम से कम सैनिक दृष्टिकोण से अनुशासित हैं और वे दुनिया के किसी भी देश के कैडेट कोर और अधिकांश देशों के प्रादेशिक सेना एवं सहायक सेना के मुकाबले खड़े हो सकते हैं।

आज एन०सी०सी० में कैडेटों की कुल संख्या 2.4 लाख है जो कि पिछले 10 वर्षों या 5 वर्षों के मुकाबले काफी ज्यादा है। यदि इस संदर्भ में ए०सी०सी० पर विचार किया जाता है और श्री माथुर के ये विचार कि इन लड़कों को सिर्फ सैनिक प्रशिक्षण से ही नहीं बल्कि कुछ रचनात्मक प्रकार के अनुशासित कार्यों से भी जोड़ा जाना चाहिए, को थोड़ा सा भी स्थान यदि दिया जाता है तो उक्त संख्या में दस लाख अतिरिक्त लड़के और लड़कियों को सम्मिलित किया जा सकता है। पिछले तीन वर्षों में ए०सी०सी० की संख्या में 100% की उल्लेखनीय रिकार्ड वृद्धि हुई है। 31.3.1957 अर्थात् तीन पूर्व के आंकड़ों के अनुसार एन०सी०सी० में कैडेटों की कुल संख्या, सीनियर और जूनियर डिवीजन सहित, ए०सी०सी० और लड़कियों की संख्या को छोड़ कर 1,40,057 अर्थात् 1.4 लाख थी। पिछले वर्ष 31 दिसम्बर को राष्ट्रीय कैडेट कोर में कैडेटों की कुल संख्या 2,35,418 थी जिसमें जूनियर डिवीजन, लड़के और लड़कियों की संख्या क्रमशः 1,14,140, 93,738 और 27,540 थी।

मैंने जो आंकड़े प्रस्तुत किये हैं उन्हें यदि कोई चुनौती देना चाहे तो दे सकता है लेकिन यह चुनौती ठहरेगी नहीं। इसलिये मैं कहूंगा कि यहां इस विषय में प्रभावकारी बहस की संभावना है यदि मामले के तथ्यों पर आप ध्यान नहीं देते हैं।

उसके बाद यह कहा गया कि यह मात्र एक खिलौना संगठन है जो किसी सैन्य या अन्य उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता, इस संगठन पर कोई ध्यान नहीं देता, न यह सैन्य सेवाओं के लिये उपयोगी है। इस प्रकार बात करते हैं या इस प्रकार का कोई वक्तव्य देते हैं तो मुझे बहुत अफसोस होता है क्योंकि इसका उन कैडेटों और अफसरों के नैतिकबल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो इस दिशा में वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिये कड़ी मेहनत करते हैं।

आज भारतीय सेना के अधिकारियों की कुल संख्या में 50 प्रतिशत से ऊपर प्रवेशक एन०सी०सी० के माध्यम से आते हैं। पिछले वर्ष खडकवासला जाने वाले कैडेटों में 43% एन०सी०सी० के माध्यम से आये थे। मेरा कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि वे एन०सी०सी० संगठन के माध्यम से चुने गये थे बल्कि वे लड़के जो एन०सी०सी० के प्रशिक्षण से गुजरे हैं एन०सी०सी० के लड़के कहे जाते हैं और उनका अनुपात यहां 43% है।

देहरादून में पिछले वर्ष तक एन०सी०सी० के उम्मीदवारों के लिए प्रशिक्षण हेतु 10 प्रतिशत स्थान आरक्षित थे। वहां एक विशेष पाठयक्रम है और इस वर्ष से एन०सी०सी० प्रशिक्षण को दृष्टि में रखते हुए इसमें थोड़ा संशोधन किया गया है और एन०सी०सी० के लिये आरक्षित कोटे को बढ़ाकर 15% कर दिया गया है। हालांकि यह बढोतरी कोई बहुत प्रभावकारी नहीं है। शेष स्थानों को संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा खुली प्रतियोगिताओं के जरिये भरे जाने के लिये दिया गया है। इस खुली प्रतियोगिता में भी 50 से 55 प्रतिशत एन०सी०सी० के लड़के ही सफल होते हैं जिसके परिणामस्वरूप आज थल सेना और कुछ हद तक नौसेना एवं वायुसेना के अधिकारियों के ग्रेड में एन०सी०सी० के लड़कों की संख्या 50% से भी अधिक को गयी है और इस प्रतिशत में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सबसे बड़ी बात यह है कि मेडिकल या इंजीनियर कोर और दूसरे वैज्ञानिक संगठनों में अधिकाश युवा ऐसे हैं जो पहले एन०सी०सी० के केडेट थे और जिन्होंने राष्ट्रीय रक्षा के संबंध में जानकारी प्राप्त की होती है।

सशस्त्र सेवाओं में 50% प्रवेशक एन०सी०सी० के लड़के होते हैं। मैं अपने इस बयान पर कायम हूं जिसकी सत्यता की जांच किसी भी समय की जा सकती है। इससे पता चलता है कि विशेषज्ञ वास्तविकता से कितने अनभिज्ञ हैं। सवाल यह उठता है कि एन०सी०सी० कैडेंट को सशस्त्र सेना के अन्य रैंकों में कैसे भर्ती किया जाता है? एन०सी०सी० के कैडेट अधिकारी को, जो संभवतः विद्यालय का कोई शिक्षक ही होता है, सैनिकों की नियमित भर्ती की तुलना में आयु सीमा में छूट प्रदान क्यों की जाती है? इस संबंध में भाषण देना बहुत आसान है जिसका संबंध वस्तुतः न तो इसके प्रशासन से और न ही इस संगठन पर लागू होने वाले नियमों से होता है। अतः यह संभव नहीं है कि बिना प्रशिक्षण के किसी एन०सी०सी० कैडेट या लड़के को चुन लिया जाये और उससे कह दिया जाये कि तुम अधिकारी हो गये हो। एन०सी०सी० का प्रशिक्षण तो उसे केवल मिलिटरी कालेज में पहुंचने की तैयारी करवाता है और उस मिलिटरी कालेज में उसके अच्छे प्रदर्शन के आधार पर ही उसे चुना जाता है। अगर मिलिटरी कालेज में प्रवेश के लिये आवेदकों की संख्या में एन०सी०सी० कैडेटों की अधिकतम संख्या होती है तो यह अपने आप एन.सी.सी. अस्तित्व के औचित्य को सिद्ध करता है।

* * *

अब मैं राष्ट्रीय कैडेट कोर के विकास पर आता हूं। गत बारह महीनों में राष्ट्रीय कैडेट कोर में दो वर्ग शामिल किये गये हैं। इनमें से एक वर्ग के बारे में हमारा जो विचार है वह बिल्कुल श्री यू.सी.पटनायक के विचार जैसा नहीं है। कहना यह है कि इनमें कुछ राष्ट्रीय कैडेट कोर का प्रशिक्षण पूरा करेंगे और उनमें से कुछ ऐसे भी होंगे जो अधिकारी

वर्ग में भर्ती होंगे और शेष अन्य रूप में। अतः अब राष्ट्रीय कैडेट कोर में अधिकारी प्रशिक्षण यूनिट प्रारम्भ किया गया जिसमें प्रत्येक वर्ष 750 लड़के लिये जायेंगे और वे देहरादून में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे जेंटलमैन कैडेटों की तरह ही प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे। ये सब अधिकारी होंगे। वे यूनिटों में अधिकारी नहीं होगे परन्तु वे कैडेट अधिकारी होंगे और उन्हें अधिकारियों के रूप में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इस यूनिट में प्रवेश को केवल उन प्रशिक्षार्थियों तक सीमित रखा जायेगा जो एक तरफ तो शारीरिक रूप से सशक्त हों और साथ ही उनमें अपेक्षित योग्यता भी हो जो कभी कभी अधिकांश रंगरूटों में नहीं होती है। इसके साथ-साथ उन्हें इंजीनियरिंग, डाक्टरी, कास्ट एकाउंटिंग या प्रशासन में विशेषज्ञता प्राप्त हो या ऐसे कैडेट हों जिनमें नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता हो। कहना यह है कि यह 750 कैडेट देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से लिए जायेंगे और प्रत्येक संस्थान से कुछ ही कैडेट लिए जायेंगे ताकि प्रत्येक को चयन का मौका मिल सके और व्यक्तिगत रूप से भी अवसर प्राप्त होगा और वह इस प्रकार कि जिसने राष्ट्रीय कैडेट कोर में दो अथवा तीन वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो और अगर वह भर्ती उम्र से अधिक उम्र का नहीं है उसे भी अवसर प्राप्त हो सकेगा। अगर वे प्रतिभाशाली हों तो वहां से उन्हें मिलिट्री कालेज में प्रवेश प्राप्त हो सकेगा ताकि वे पाठ्यक्रम पूरा कर सकें। यहां तक कि इंजीनियर भी उच्च पाठ्यक्रम के लिये पुणे जाते हैं। एक वर्ग के विषय में तो स्थिति यह है। दूसरा वर्ग जो आरंभ किया गया है उसे एन.सी.सी. राइफल्स कहा जाता है। इसके संबंध में कुछ स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता है नियमित सेना में राइफल रेजीमेंट का होना एक सामान्य प्रक्रिया है। सर्वप्रथम वे इन्फेंट्री यूनिट्स हैं। उन्हें हल्के फुल्के हथियार दिये जाते हैं और वे शीघ्र कूच कर सकते हैं। उन्हें इसी प्रयोजन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। परन्तु कोई ऐसी धारणा न बने कि यह एन.सी.सी. राइफल कोई घटिया या सस्ती टुकड़ी है। उन्हें समूचे पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है। वे उन्हीं अधिकारियों के अधीन रहेंगी और उन्हें वही अनुदेश प्राप्त होंगे तथा उन्हें राष्ट्रीय कैडेट कोर के उन अधिकारियों से कमाण्ड प्राप्त होगा जिन्होंने राष्ट्रीय कैडेट कोर में दस वर्ष सेवा करने के बाद इस क्षेत्र में अनुभव प्राप्त किया है। इसी संदर्भ में सरकार ने इस पर विशेष ध्यान दिया और घोषणा की कि 1960 के बजट वर्ष के अंत तक 2,50,000 नवयुवक भर्ती किये जायेंगे। वे हथियारों से लैस होंगे और उचित प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे तथा उचित भूमिका निभायेंगे। इससे राष्ट्रीय कैडेट कोर पर, वह वर्तमान में जिस स्थिति में है, कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और हम आशा करते हैं कि यह भी उसी प्रकार प्रगति करेगा।

* * *

बजट के प्रावधानों को ध्यान में रखकर हमने 2,50,000 को दो भागों में विभाजित कर दिया है। इनमें से इस वित्त वर्ष के पूरा होने से पहले 50,000 लिये जायेंगे और शेष

2,00,000 उसके बाद। सभापति महोदय, आप सुनकर प्रसन्न होंगे कि 50,000 की यह संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। अतः जहां तक नवयुवकों की प्रतिक्रिया का संबंध है इसमें कोई कठिनाई नहीं है। मैं सोचता हूं कि यदि सदन इन विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया और योग्यता के बारे में प्रशंसा के दो शब्द कह दे तो बहुत अच्छा होगा।

यदि यह पूछा जाये कि क्या वर्तमान में किसी प्रकार की राष्ट्रीय सेवा आरंभ की जानी चाहिये तो मैं कहूंगा कि सरकार का सेना में अनिवार्य भर्ती करने का कोई विचार नहीं है। यदि देश की सेना में अनिवार्य भर्ती करने वाली किसी योजना पर किसी को अंतःकरण से आपत्ति है तो उसे छूट दी जायेगी। अन्यथा, हम सभ्य देश नहीं रहेंगे।

अतः इस समय जिस हिसाब से प्रगति हो रही है अकेले राष्ट्रीय कैडेट कोर में लगभग तीन चार वर्षों में सैनिक प्रशिक्षण के लिए वे सब विद्यार्थी खप जायेंगे जो इस खास आयुवर्ग के हैं। समय के साथ अनुभव के द्वारा यह तब पता चल पायेगा कि एन.सी.सी. का प्रशिक्षण कहां तक पाठ्यचर्या के अध्ययन के साथ पूरा किया जा सकता है क्योंकि इस बारे में किये गये काफी सोच विचार इस बात के पक्ष में हैं कि आज सैन्य प्रशिक्षण या कैडेट प्रशिक्षण मात्र शारीरिक अनुशासन के विषय नहीं हैं। अनेक विषय हैं जिन्हें सीखना है। अनेक बातें हैं जिनका अध्ययन किया जाना है। महाविद्यालयों और राष्ट्रीय कैडेट कोर के लिए अपनी अपनी पाठचर्या में सामंजस्य स्थापित करना संभव हो सकता है ताकि कुछ विषय जो विश्वविद्यालय में असामान्य है, राष्ट्रीय कैडेट कोर के प्रशिक्षण में शामिल किये जा सकते हैं।

* * *

मैं समझता हूं कि संविधान के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि छात्राओं का क्या होगा। आज राष्ट्रीय कैडेट कोर में लगभग 30,000 के करीब छात्राएं हैं। राष्ट्रीय कैडेट कोर राइफल्स जैसी ही एक और सेवा का गठन छात्राओं के लिए किया जा रहा है जिसे फील्ड एमबुलैंस, नर्सिंग, परिवहन, सिगनल, प्रशासन और इसी प्रकार की सेवाओं में विशेषज्ञता प्राप्त होगी।

यहां राष्ट्रीय आपात काल की बात भी कही गई है। मेरे विचार में सदन अथवा विश्व को इस तरह का आभास देना गलत होगा कि हमारा देश अपनी सक्रिय राष्ट्रीय सुरक्षा का दायित्व स्कूली बच्चों पर डाल रहा है जबकि युद्ध की कोई घोषणा नहीं हुई है। लेकिन हमारे जैसे किसी भी देश में समाज के अंदर अनुशासन की बहुत आवश्यकता है। चाहे कोई श्री गोरे से सहमत हो अथवा नहीं, परन्तु तथ्य यही है कि अधिक अनुशासन संगठन और क्षमता से ही हम ऐसे मार्ग पर चल सकते हैं जिससे दूसरे लोगों को किसी तरह की परेशानी आदि न हो। इसलिए समाज के अधिक से अधिक वर्गों को चाहे वह

कालेज में हों अथवा गांवों में, किसी न किसी संगठन के अंतर्गत आना चाहिए। इसी कारण से लोक सहायक सेना का विस्तार किया जा रहा है और उसके प्रशिक्षण क्रम में परिवर्तन किया जा रहा है।

इसीलिए इस प्रयोजन के लिये हम छात्र सेक्शन शुरू कर रहे हैं। यदि दुर्भाग्य से हमें आपातकाल का सामना करना पड़े तथा और अधिक सेना की आवश्यकता पड़े तो सबसे पहले सीमा पर नियमित सेना ही मोर्चा संभालेगी जैसा कि इसे करना भी चाहिये, उसके बाद प्रादेशिक सेना, सेना के स्थान पर काम करेगी और चूंकि, माननीय सभापति महोदय, कुछ सदस्यों ने वाद-विवाद को इस संकल्प की परिधि के बाहर पहुंचा दिया है इसलिए क्या मैं यहां यह पूछ सकता हूं कि क्या प्रादेशिक सेना का स्थान सेना के बाद ही है। अभी तक यह देखने में नहीं आया है कि किसी संसद सदस्य ने प्रादेशिक सेना में कोई अधिकारी का पद अथवा अन्य कोई पद ग्रहण किया हो। इस बारे में लगातार अपीलें नहीं की जा सकती हैं। विश्व में भारत ही केवल ऐसा देश है जहां प्रादेशिक सेना में प्रशिक्षण पाने के लिए और अपनी योग्यताओं का विकास करने के लिए प्रत्येक वर्ग के नवयुवक सामने नहीं आ रहे हैं। प्रादेशिक सेना ऐसा संगठन है जिसमें सामान्यतः सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। परन्तु जो भी हो, जब ये युवा वर्ग इस सेना में आते हैं तो प्रादेशिक सेना हर तरह से विकसित हो जाती है और वह नियमित सेना बन जाती है और तभी उसे मोर्चा संभालने का दायित्व दिया जाता है। इनको पूरे सैनिक प्रशिक्षण के बगैर ही कुछ कार्य सौंप दिये जाएंगे और इनको अपने घर से दूर भी नहीं रहना पड़ेगा क्योंकि हो सकता है वे लोग इस कार्य के लिये अभी बहुत नये हों। संचार के क्षेत्र में यह परिवहन सिंगनल प्रशासन और इसी प्रकार के अन्य कार्यों में मदद कर सकते हैं।

* * *

अगले वित्तीय वर्ष के अंत तक, हम यह कहने लायक हो जायेंगे कि अधिकतर नवयुवक जरूरी नहीं कि सेना में ही जाएं अपितु इस प्रकार के प्रशिक्षण और इन संगठनों में कार्य करने के लिए तत्पर हैं। समय-समय पर सरकार के विचाराधीन राष्ट्रीय अनुशासन संबंधी अन्य प्रकार के कार्यक्रम रहेंगे जिनके द्वारा उन लड़कों और लड़कियों को जो इसमें शामिल नहीं होते या उनकी आयु कम है को अनुशासन संबंधी प्रशिक्षण दिया जाएगा। इस बारे में हमें यही कहना है और उन परिस्थितियों में सरकार को इस संकल्प को स्वीकार करने से इंकार कर देना चाहिए।

9

बेरोजगारी की समस्या*

बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए, बेरोजगारी के आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं। मुझे इस बात से कोई विरोध नहीं है; संभवतः इसमें विरोध करना अच्छा भी नहीं है। किन्तु योजना आयोग के विश्लेषण को देखते हुए और उसी के आधार पर अपने अनुमान लगाते हुए यह कहा जा सकता है कि इस देश में संभवतः 200 लाख लोग ऐसे हैं जो पूरी तरह से बेरोजगार हैं; लगभग 400 लाख लोग ऐसे हैं जिनका नाममात्र का रोजगार है अर्थात् उन्हें महीने में चार या पांच दिन का रोजगार उपलब्ध होता है और संभवतः हमारी कुल जनसंख्या का लगभग 30 प्रतिशत ऐसा है जिसकी बेरोजगारी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती है। किन्तु स्वभाव से ही रुढ़िवादी होने के कारण मैं रुढ़िवादी आंकड़े ही सदन में देना चाहता हूं। हम मानकर चलते हैं कि 200 लाख की संख्या है जो पूरी तरह बेरोजगार है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस संदर्भ के कार्यकाल में यदि हम जनसंख्या को स्थायी मानकर चलें, हमें प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख लोगों के लिए रोजगार उपलब्ध कराना पड़ेगा। ऐसा केवल उसी स्थिति में है यदि जनसंख्या स्थिर रहती है तो। किन्तु योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार जनसंख्या में प्रति वर्ष 57 लाख की वृद्धि होती है। अतः मोटे तौर पर इस सरकार को और देश को 100 लाख लोगों को नया रोजगार उपलब्ध कराना पड़ेगा। ताकि स्थिति सुगम बनी रहे; इसमें सुधार की तो कोई आशा करनी ही नहीं चाहिए।

अब इस मामले में क्या स्थिति रहेगी? हम जानते हैं कि चुनावों के दौरान बहुत से वायदे किए गए हैं। मुझे ठीक से याद नहीं है। आखिर कोई भी इन सभी वायदों को याद नहीं रखता क्योंकि ऐसा करना सिरदर्दी की बात है। किन्तु मैंने कुछ सदस्यों और कुल मिलाकर सरकार को यह कहते हुए सुना है कि हर वर्ष 10 लाख लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा। इससे 5 वर्षों के दौरान 50 लाख लोगों को रोजगार मिल जाएगा। इसके बावजूद हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हमें और 450 लाख

*लोक सभा वाद-विवाद-दिनांक 1 अप्रैल, 1971

लोगों को रोजगार देना है ताकि यह संख्या 500 लाख तक पहुंच जाए। हाल के आंकड़ों के अनुसार एक जिले में 1000 लोगों को रोजगार दिया जाएगा। मैं समझता हूं कि 315 से अधिक जिले हैं। मोटे तौर पर, उसे 350 मान कर चलें तो 350,000 लोगों को रोजगार मिलेगा। फिर भी हम उस स्थिति से बहुत ही दूर हैं जो होनी चाहिए। अतः यह समस्या बहुत व्यापक समस्या है। संसद सदस्यों के रूप में और एक लोकतांत्रिक देश के नागरिक के रुप में हम इसे केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं मान सकते हैं। हमारा उद्देश्य केवल इनकी आलोचना करना या यह कहना ही नहीं है कि केवल 44 प्रतिशत लोगों ने ही इनके पक्ष में मतदान किया है। हमारे देश में संसदीय प्रणाली है और किसी संसदीय प्रणाली में यदि 44 प्रतिशत इस बात का दावा करते हैं कि उनका 75 प्रतिशत बहुमत है, तब तो यह बात यहीं समाप्त होती है। इसके बारे में अफसोस करना निरर्थक है। यह केवल आंकड़े हैं। क्रैश योजना से इन का समाधान नहीं किया जा सकता है।

मुझे इस बात का बहुत खेद है कि वित्त मंत्री ने यह कहकर कि उन्होंने क्रैश योजना के लिए 50 करोड़ रुपए उपलब्ध कराएं हैं, हमको इस बात का अनुभव कराया है कि सब कुछ ठीक-ठीक है। मैं इन 50 करोड़ रुपयों की बात नहीं कर रहा हूं। 50 करोड़ रुपए की यह राशि योजना के अतिरिक्त है। किन्तु योजना के अतिरिक्त कौन से संसाधन हैं? योजना के अपने कोई संसाधन नहीं है। हम 50 करोड़ रुपयों की बात कर रहे हैं जो हमें और कहीं से प्राप्त करने हैं। मैं समझता हूं कि वर्तमान स्थिति में अर्थात् आंकड़ों की दृष्टि से 100 लाख बेरोजगार लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने की जिस समस्या को हम सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं उसका इसके साथ कोई संबंध नहीं है।

अतः 50 करोड़ रुपए योजना से बाहर नहीं होने चाहिए। इस राशि को योजना से बाहर कहने का कोई अर्थ नहीं है। योजना में जो होता भी है, वह भी नहीं दिया जाता है। यह केवल कागजों पर आंकड़े ही आंकड़े होते हैं। यह किसी अन्य देश से मंगाना पड़ेगा अथवा घाटे की वित्त व्यवस्था से पूरा करना पड़ेगा जिसका अर्थ यह होगा कि नासिक के मुद्रणालय में और अधिक नोट छापना अथवा ऐसा ही कोई काम करना और भारी कर लगाकर रुपये की कीमत को संतुलित रखना या इसका मूल्य बनाए रखना।

अतः यदि हमें सही ढंग से बेरोजगारी की समस्या का हल करना है तो केवल अपनी कुछ योजनाओं की आलोचना करना अथवा यह कहना ही काफी नहीं है कि प्रत्येक राज्य में तेल शोधक कारखाना होना चाहिए या प्रत्येक स्नानघर में इस्पात कारखाना होना

चाहिए। हमें 10-15 वर्ष की अवधि के आलोक में इस समस्या को देखना है। सरकार की नीति हमारे सामने स्पष्ट की जानी चाहिए जिससे हमें यह पता चले कि कितने लोगों को किस प्रकार से रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा, वे योजनाएं कौन कौन सी हैं और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कौन-सी योजनाएं और प्रमुख परियोजनाएं चालू की जाएगी। भारत में नदी प्रणाली, प्रत्येक राज्य के जलमार्ग अभी आपस में जोड़ने बाकी हैं। देश के खनिज-अयस्क देश से बाहर भेजे जा रहें हैं और उनका इस्तेमाल देश में नहीं किया जा रहा है। और फिर समुद्री संपदा का दोहन नहीं किया जा रहा है। मेरे चुनाव क्षेत्र का कोई भी मछुआरा आजकल के मशीन युग में भी अपने जीवन को खतरे में डालकर ही दो मील से अधिक दूर जा सकता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अतः यदि सरकार कोई योजना बना रही है तो इसको पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि इस कार्यक्रम को अमल में लाने के उददेश्य से पांच वर्षों में क्या किया जाएगा और आने वाले वर्षों में क्या परिकल्पना की जाएगी, ताकि हमें पता चल सके, कि कितनी बेरोजगारी है, कौन-सी परियोजनाएं आरंभ करनी हैं और कितनी बेरोजगारी दूर की जाती है। केवल इस प्रकार की परिप्रेक्ष्य योजना के द्वारा ही जैसा कि इसे कहा जाता है, हम इस बेरोजगारी की समस्या यदि पूरी तरह से हल न भी कर सकें तो भी इसे गंभीरता से सुलझाने का प्रयास तो कर ही सकते हैं।

10

संविधान (पच्चीसवां संशोधन) विधेयक*

उपाध्यक्ष महोदय, यदि आप मुझे कहने की इजाजत देते हैं तो मैं जो सामान्य प्रक्रिया है उसके विपरीत जाने की कतई कोशिश नहीं करूंगा क्योंकि सदन में भारी बहुमत और देश की जनता इस विधेयक के सामान्य प्रयोजनों के पक्ष में है और इसका अर्थ यह नहीं है कि इन परिस्थितियों के कारण इस विधेयक को जल्दबाजी में पारित कर दिया जाए और जितनी जांच की जा सकती है उसकी उपेक्षा कर दें। मेरे मित्र श्री सिद्धार्थ शंकर राय ने प्रो० लास्की के एक कथन का उल्लेख किया। एक बार उन्होंने सम्पत्ति के अधिकार का उल्लेख करते हुए कहा था कि एक व्यक्ति के पास एक टूथ ब्रुश हो सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम टूथ ब्रुश कारखानों का केन्द्रीयकरण न करें; हमारे पास अपना कपड़ा हो सकता है; इसका अर्थ यह नहीं कि कपड़े के कारखानों पर सरकारी नियंत्रण न हो। यह सब सही है।

इस चर्चा से तीन मसलों को उजागर किया गया है। पहला है सम्पत्ति या सम्पत्ति के अधिकार को वापिस लेना। विख्यात वकीलों ने न्यायपालिका के विरुद्ध एक अभियान छेड़ रखा है। मैं कहना चाहता हूं कि जबकि न्यायपालिका इन सब चीजों से प्रभावित हो सकती है, वह हर मुकदमें करने वाले जो मुकदमा हार जाता है वह पहले न्यायाधीश पर और फिर वकील के ऊपर दोषारोपण करता है। मुझे कार्यपालिका से भी सुरक्षा चाहिए; एक नागरिक कार्यपालिका से सुरक्षा चाहता है। अकसर ऐसा होता है कि जब विधायिका अपनी शक्तियों से बाहर चली जाती है तो न्यायपालिका को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ता है। यह विधान सुप्रीम कोर्ट द्वारा हाल ही में लिए गए कुछ निर्णयों के संदर्भ में लाया गया है जो सामाजिक प्रगति और समानता की ओर आगे बढ़ने में बाधक रहे हैं। यह निर्णय पहले लिए गए निर्णयों से भिन्न थे। इसमें मैं श्री गोखले का समर्थन मांगूंगा क्योंकि उन्होंने यह नहीं कहा कि उन्हें समाजवाद में विश्वास है।

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 1 दिसम्बर, 1971

उनका कहना है "मैं उसे वापस लाने का प्रयत्न कर रहा हूं जो पहले नहीं था।" इन फैसलों से पहले यह समझा जाता था कि मूल अधिकार केवल गरीबों की रक्षा के लिए हैं, सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए नहीं हैं। किसी तरह उनका झुकाव उस ओर हो गया और मात्रा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो गया।

यह कहकर मैं ठोस मसलों पर अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। संशोधन के पहले भाग में, सरकार ने क्षतिपूर्ति के स्थान पर "राशि" को प्रतिस्थापित किया। यह मैं कानूनी सलाहकारों पर छोड़ देता हूं कि वे देखें कि उच्चतम न्यायालय से उन्हें कोई परेशानी न हो। मैं अगर एक साधारण व्यक्ति के रूप में पूछूं कि यह राशि किस लिए दी गई है। सरकार बिना कारण पैसा नहीं दे सकती; किसी कारण से ही दिया जाता है और वह कारण है क्षतिपूर्ति। इसी लिए राशि दी जाती है।

इस विधान में केवल "राशि" ही लिखा है। यह सब राशियां विभिन्न कानूनों, विभिन्न चीजों और विभिन्न कार्यों के लिए हैं। मैं चाहता हूं कि सरकार जनता को आश्वासन दे कि यह एक और अधीनस्थ विधान नहीं होगा जिसमें बहुत से अफसरों को बिना मार्गदर्शन किए शक्ति प्रदान की जाएगी। इसका अर्थ यह है कि एक ओर इसमें बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार के अवसरों के लिए कोई रास्ता न बचेगा और दूसरी ओर किसी के साथ कोई अन्याय भी नहीं होगा । अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस विधान में अनुज्ञापक उपबन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं और इसके बाद इसकी विधियां आएंगी। कहने का अर्थ यह है कि इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है और आम नागरिकों की कैसे रक्षा की जाए आदि बातें इसके बाद आएंगी।

इसमें यह कहने के लिए अधिक बहस की आवश्यकता नहीं है कि जनता को कार्यपालिका से रक्षा की आवश्यकता है। कल गृह मंत्री ने एक बेहद बेकार वक्तव्य दिया जैसा मैंने कभी किसी मंत्री को कहते नहीं सुना। जब लोगों को जेलों में पीट-पीट कर मार डाला जा रहा है, यह जेलों में सुधार की बात कर रहे हैं। इस कारण हमें कार्यपालिका से सुरक्षा की आवश्यकता है।

दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं, खासकर अपने विद्वान मित्र श्री गोखले से, कि न्यायिक पुनरीक्षण की बात करना गलत है। क्या न्यायालय कानूनों का पुनरीक्षण करती है या कानूनों का निर्वचन करती है? इसका असर यह हो सकता है कि जो कुछ आपने किया उसे वे उलट देंगे, परन्तु अगर हम स्वयं ऐसा कहें कि उन्हें कानून के पुनरीक्षण का अधिकार है तो इसका मतलब यह होगा कि हम उन्हें अधिक शक्तियां दे रहे हैं। उनका काम लागू किये गए कानूनों की व्याख्या करना है और अगर किसी कानून की गलत व्याख्या होती है या आप ऐसा सोचते हैं कि इसकी व्याख्या को बदलना चाहिए तो यह

संसद का कार्य है कि वह उसमें परिवर्तन करे। ऐसा पहले अमरीका तथा इंगलैंड में किया गया जहां पर ऐसा कहा जाता है कि जो अदालतें नहीं दे सकती हैं वह संसद दे सकती है। इसलिए मेरे विचार में यह कहना कि उन्हे न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार है या हम इसमें सुधार कर रहे हैं, हमारे हित में नहीं होगा क्योंकि हम न्यायपालिका को वह अधिकार दे रहे हैं जिनका वह स्वयं दावा नहीं करती। यहां न्यायिक पुनरीक्षण का कोई प्रश्न नहीं। वे कानूनों की व्याख्या कर सकते हैं और ऐसी व्याख्या चाहे किसी कानून को पूरी तरह निरस्त कर दे या उसमें परिवर्तन वगैरह कर दे। ऐसी स्थिति वर्षों से चली आ रही है।

कानून मंत्री की टिप्पणियों के संदर्भ में मेरा विचार है कि यह खेदजनक है और मुझे विश्वास है कि संबंधित मंत्री का यह आशय नहीं था, शायद औरों की यह मंशा रही होगी। हमारे इस विशाल देश में केवल उच्चतम न्यायालय ही न्यायपालिका नहीं है। इस देश में काफी बड़ी संख्या में छोटे जज हर जगह बैठे हुए हैं और जो कुछ देश में हो रहा है उसके बावजूद वे एक हद तक विश्वास हासिल किए हुए हैं। यदि हम बाहर या संसद में यह कहें, अगर मंत्रियों, प्रधान मंत्री और हर अन्य सदस्य अगर यह कहे कि ये लोग — श्री गोखले ने क्या कहा? —जो पिछली तीन पीढ़ियों से संबंध रखते हैं, इससे यही जाहिर होता है कि एक जज जो बाद में मंत्री बन जाता है वह भी कुछ हास्यास्पद कह सकता है। इसका तात्पर्य यही है, और कुछ नहीं। वर्तमान स्थिति में, अगर हम इधर आकर इस प्रकार व्यापक रूप से आलोचना करें, तो हम साधारण व्यक्ति, मुकदमा लड़ने वाले और अन्य, से न्यायपालिका के प्रति सम्मान की आशा नहीं कर सकते।

हमारी न्यायपालिका को वैसा सम्मान नहीं मिलता जैसा एक मूर्ति की पूजा होने पर सम्मान मिलता है। संसदीय प्रणाली में यद्यपि हमारे यहां शक्तियों का विभाजन नहीं हुआ है पर राजनीति की विभिन्न शाखाएं हैं। मेरे विचार में एक "कम्यूनिस्ट" समाज में भी न्यायालय होंगे, एक जनसंघ समाज में भी न्यायालय होंगे, एक स्वतंत्र समाज में भी न्यायालय होंगे। अगर संगठित समाज न भी हो, मानव उत्पत्ति से पहले के समय में भी, जानवरों के बीच कुछ हद तक न्याय निर्णय होता है। इसलिए ऐसा किसी स्तर पर तो किया जाता है और मेरे विचार में प्रतिनिधि लोकतंत्र जैसी किसी भी आधुनिक प्रणाली में लोगों को यह कहने का मौका देना कि प्रतिष्ठित व्यक्ति यह कह रहे हैं कि न्यायपालिका कुछ नहीं है हमारी भारी भूल होगी और वे भी ऐसा ही कहने लगेंगे।

** ** **

मैं नहीं जानता हूं कि कौन से संशोधन रखे गए हैं क्योंकि सुबह मैं सदन में उपस्थित नहीं था। श्री गोखले ने अब तक अपना मन बना लिया होगा पर मैं इस बारे में चिंतित

नहीं हूं। ये सब मुख्य विषय की तुलना में काफी नगण्य हैं। यह विधान जरूरी है। हमारे संविधान में कई संशोधन किए जाएंगे क्योंकि हमारा समाज विकास कर रहा है। संविधान निर्माताओं ने समझदारी से अथवा अन्यथा, संविधान में सब कुछ शामिल किया, यहां तक कि न्यायमूर्तियों के वेतन और सभा की बैठकों तथा अन्य बातों के बारे में भी प्रावधान शामिल किए गए हैं उन्होंने संविधान में 365 या 465 अनुच्छेद, या इनकी जो भी संख्या हो रखें, तथा कई अनुसूचियां भी रखीं। संविधान जितना बड़ा और व्यापक होगा उतने अधिक उसमें संशोधन होंगे। साधारणतया लोगों का मानना है कि संविधान अगर व्यापक है तो, बाद में उसमें संशोधन की कोई जरूरत नहीं होगी। लेकिन हमारा अनुभव इसके विपरीत रहा है। संभवतः तभी कुछ ही वर्षों में इतने अधिक संशोधन करने पड़े हैं, संविधान में और संशोधन किए जाएंगे जो कि अच्छी बात है और इससे पता चलता है कि समाज में परिवर्तन हो रहे हैं चाहे ये समाज के भले में हैं या बुरे में। यह अच्छी बात है।

एक संशोधन पर चर्चा हुई है और अखबारों के अनुसार सरकार उसको स्वीकार करने जा रही है। यह अल्पसंख्यकों से संबंधित है। मुझे दुख है कि श्री एन्थोनी यहां उपस्थित नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि मैं जो कहने जा रहा हूं वह अच्छा नहीं लगेगा। मैं अल्पसंख्यकों के लिए विद्यालय चलाए जाने की विशेष परिस्थितियों को समझता हूं। पर मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि एक अल्पसंख्यक द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालय के साथ विशेष सलूक क्यों किया जाए। मुझे सिर्फ यह करना है कि अल्पसंख्यक समुदाय के किसी व्यक्ति, उदाहरणार्थ श्री गुप्ता को पकड़ूं और एक ट्रस्ट बनाऊं और उन्हें इसका प्रभारी बना दूं। कहने का अभिप्राय यह है कि सिर्फ बहाना बनाने की आवश्यकता है। देश के सभी विद्यालय ज्यादातर एक ही प्रणाली के अंतर्गत आते हैं। ये सभी किसी न किसी तरीके से एक ही परीक्षा में बैठते हैं, चाहे पिछड़े हों या अगड़े पर हैं सभी गरीब। इसलिए वास्तविक मुद्दा यह है कि क्या शैक्षिक संस्थाओं के लिए कोई विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। मुझे आशा थी कि श्री एस०एस० राय जिनका कि शिक्षा पर नियंत्रण है संभवतः इस विषय पर जरूर कुछ कहते। हमको शिक्षा के बारे में चिंता है। सबको शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कोई कारण नहीं कि जो कठोर उपाय हैं उन्हें वापिस न लिया जाए। क्योंकि अल्पसंख्यक कही जाने वाली संस्थाओं के पास काफी सम्पत्ति है जबकि बहुसंख्यक लोग अल्पसंख्यक समुदायों में नहीं आते हैं। मैं इतने वर्षों तक चले आ रहे आरक्षण के बारे में कुछ नहीं कह रहा हूं। ये अल्पसंख्यकों के लिए विद्यालय नहीं हैं बल्कि अल्पसंख्यकों के विद्यालय हैं। अगर संशोधन में अल्पसंख्यकों के लिए विद्यालय कहा गया होता तो वह तर्कसंगत होता पर जब संशोधन में अल्पसंख्यकों

के विद्यालयों की बात की गई तो यह सिर्फ अल्पसंख्यकों के नाम पर एक विशेषाधिकृत वर्ग को खड़ा करना हुआ।

नीति निर्देशक सिद्धांतों के बारे में हो सकता है मेरी जानकारी कम हो पर मुझे इनके ऊपर विवाद का कारण समझ नहीं आता है। क्या आप ऐसा विधान बनाएंगे जिसमें लिखा होगा कि "हम निदेशक सिद्धांतों को लागू कर रहे हैं" अथवा क्या आप ऐसा विधान बनाएंगे जिसमें लिखा होगा "हम सबको मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराएंगे"? कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी विधान बनाया जाए वो स्पष्ट होना चाहिए। यह सब राजनीतिक दृष्टि से वाहवाही लूटने तथा वोटों को प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। कहने का मतलब है कि हम निदेशक सिद्धांतों का स्तर मूल्य अधिकारों के स्तर के बराबर कर रहे हैं, इत्यादि यह सब तर्कसंगत नहीं है क्योंकि यह आम आरोप है कि आपने मूल अधिकारों का स्तर घटा दिया है तो निदेशक सिद्धांतों का स्तर कैसे बढ़ाया जा सकता है? इसलिए ये सारे विवाद कि ये न्यायालय द्वारा बदले जा सकते हैं या नहीं, उस तरह से बेकार हैं। वास्तव में अगर न्यायालयों को समाप्त कर दिया जाता है तो सारी कठिनाइयों का अंत हो जाएगा। लेकिन जब तक न्यायालय हैं, तब तक मुद्दे न्याययोग्य रहेंगे। कोई मसला न्याययोग्य है या नहीं इसका फैसला भी न्यायालय ही करता है। कोई भी व्यक्ति शिकायत लेकर न्यायालय जा सकता है और उनमें से ज्यादातर मामले सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिए जाएंगे। मतपत्रों का रसायनों से उपचार किया गया है या नहीं यह भी मुद्दा है।

कोई भी शिकायत कर सकता है इसलिए मेरे विचार में यह एक निरर्थक प्रयास है। लेकिन निरर्थकता भी जीवन का अंग है, इसलिए वो अदालत जा सकते हैं। इसी वजह से मैं संविधान संशोधन का समर्थन करता हूं, लेकिन मैं उसके पक्ष में दिए गए तर्कों का समर्थन नहीं करता हूं। मुझे याद आती है एक वरिष्ठ न्यायाधीश की अपने कनिष्ठ को कही बात कि अपने निष्कर्ष दो, आप हमेशा सही होंगे, पर कभी तर्क मत दो क्योंकि वो हमेशा गलत होंगे। स्थिति ऐसी है कि अपने विचार दूसरे के विचारों से भिन्न होने पर, अपने विचार के बिना लम्बे भाषणों के तथा बिना दूसरों पर आरोप लगाए और बिना विपक्ष पर दोष लगाए ऐसा करना ही बेहतर होगा।

ऐसा कहा जा सकता है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण की वजह से यह संशोधन आवश्यक हो गया है। मैं कहना चाहता हूं कि सरकार बड़ी मात्रा में कई बैंकों को मुआवजा देने जा रही है इसलिए नहीं कि अदालत का आदेश है बल्कि इसलिए कि सरकार ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण गलत ढंग से किया है और इसी वजह से करीब 40 करोड़ रु० ज्यादा देने पड़ेंगे। मुख्य न्यायाधीश ने जो उस वक्त केवल न्यायाधीश थे कहा था, कि इसका कोई

और तरीका भी हो सकता था। इस तरीके से सरकार अपनी गलतियों का बहाना नहीं ढूंढ सकती है। सरकार द्वारा संविधान संशोधन के माध्यम से मामूली परिवर्तन करने से कोई फायदा होने वाला नहीं है।

** ** **

मैं यह कहना चाहता हूं कि हर विधान की अपनी सीमाएं होती हैं। अगर विधान से ही कार्यपूर्ति संभव होती तो देश में छुआछूत तो कबका खतम हो गया होता क्योंकि कानून द्वारा छुआछूत बहुत समय पहले से खतम कर दिया गया था। मेरा जोर कानून शब्द पर है। केवल कानून द्वारा खतम किया जाता है, व्यवहार में नहीं। मैं यह कहना चाहता हूं। लगभग 50-60 वर्षों से हमारे देश में बाल विवाह निषेध का कानून बना हुआ है। मुझे आशा है कि मेरे इस कथन से किसी को भी नाराजगी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि हमारे देश में अधिकांश विवाह बाल विवाह ही होते हैं। अतः कानून बना देने भर से ही कुछ नहीं होगा।

कुछ लोग मूल्य वृद्धि रोकने के लिए कानून बनाने के पक्षधर हैं। इससे मात्र चोर बाजारी को ही बढ़ावा मिलेगा। पूंजीवादी प्रणाली में ऐसा कदम भ्रष्टाचार को बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करेगा। यह सत्य है कि समाज विरोधी तत्वों का दमन करना आवश्यक है किन्तु यह एक अन्य मुद्दा है। नियंत्रण आवश्यक है परन्तु वह केवल व्यवस्थित समाज में ही संभव हो सकता है। एक अव्यवस्थित समाज में नियंत्रण कैसे किया जा सकता है। निःसंदेह इस तर्क का इस विधेयक से कोई संबंध नहीं।

अतः मैं यह कहते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा कि हम सभी को विशेष रूप से संसद सदस्यों को, सरकारी जिम्मेवारियां स्वीकार करते हुए विधान की प्रभावोत्पादकता की सीमाओं से अवगत होना चाहिए। कई बार इसके परिणाम उल्टे निकल जाते हैं क्योंकि हम न केवल अपने देश में बल्कि दूसरे देशों को भी ऐसा ही विश्वास दिलाते हैं। उदाहरण स्वरूप, जब दूसरे देश अस्पृश्यता तथा बाल विवाह का मामला उठाते हैं तो हम कहते हैं "हां, हमने कानून बनाकर इन बुराइयों को समाप्त कर दिया है।" इसलिए हमें स्वयं ही उस विषय में सुनिश्चित होना चाहिए।

जिस ढंग से इन सिद्धांतों को क्रियान्वित किया जाना है, वह स्वाभाविक रूप से संसद के सम्मुख चर्चा का विषय होगा। मुझे आशा है कि विधि मंत्री इस बात पर ध्यान देंगे कि इन प्रक्रियाओं का स्वरूप अर्ध-न्यायिक हो और मंत्रियों को जो अच्छे भी, बुरे भी एवं

थी उसने कुछ दार्शनिक जैसे विचार व्यक्त किये थे और मेरा अनुमान है कि उसने कहा था कि न्यायधीशों पर श्रेणीगत पूर्वाग्रह हावी रहता है क्योंकि उनका संबंध विशेष श्रेणियों से होता है। उसने न तो किसी विशेष न्यायधीश और न ही किसी न्यायालय का नाम लिया था। वास्तव. में, सम्बद्ध व्यक्ति ने यह भी नहीं कहा कि न्यायधीश को फैसला करने में कोई विशेष तरीका अपनाना चाहिए था। उसने तो मात्र उद्धरण प्रस्तुत किया था, वह ठीक था या गलत, उसने केवल यही वाक्य उद्धत किया था कि न्यायधीशों पर श्रेणीगत पूर्वाग्रह हावी रहता है। इस प्रकार की टिप्पणी अत्यंत रूढ़िवादी विचारों वाले जस्टिस कार्डोजो तथा उदार विचारों वाले न्यायधीशों द्वारा पहले भी की जा चुकी थी जिन्होंने कहा था कि आप न्यायधीश से उसके अवचेतन मन को अलग नहीं कर सकते यह तथ्य कि वह एक ऐसी विशेष श्रेणी से संबद्ध है जो कि अपने धन को सुरक्षित रखने में विश्वास रखती है और जो उसे यह विश्वास दिलाती है कि सम्पति से संबंधित अधिकार के उल्लंघन के बारे में कोई भी बातचीत अक्षम्य समझी जायेगी। इसलिए इस प्रकार की स्थिति का सामना करने के लिए ऐसे विचार व्यक्त किये गये थे। जस्टिस कार्डोजो पर इस प्रकार की भावना इतने भयंकर रूप से हावी थी कि उसे अपने अपराध को अपने ऊपर ही थोपना पडा और इसकी व्याख्या उसने इस प्रकार की।

इसलिये जब ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े जहां न्यायधीश स्वयं ही अभियोगी भी हो और न्यायकर्ता भी तो वह स्थिति अत्यंत खतरनाक हो जाती है; विशेष रूप से जब न्यायधीशों के द्वारा किसी व्यक्ति को किसी स्तर पर न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराया जा सकता हो तो आप इस संबंध में उनमें कोई अंतर नहीं कर सकते।

यदि मैं दो या तीन ऐतिहासिक घटनाएं सुनाऊं तो मेरा तर्क अधिक स्पष्ट हो जायेगा। भारत के वैधानिक इतिहास में न्यायालय की अवमानना का एक बहुत प्रसिद्ध मामला है, और वही कानून अभी भी लागू है। लाला अगर कृष्ण लाल के नाम से प्रसिद्ध एक मामला न्यायालय की अवमानना का सबसे विचित्र उदाहरण है; यहां तक कि एक के बाद एक अवमानना का यह मामला प्रिवी कौंसिल के सुपुर्द किया गया था। उस समय न्यायपालिका के स्तर पर इस मामले को नहीं सुलझाया जा सका और इसलिए अन्य तरीकों से उस पर कार्यवाही की गई। उस संदर्भ में वह एक न्यायिक अभियोग का मामला था। वह तंत्र अभी भी कार्यरत है।

सम्पूर्ण विश्व में अनेक मामलों में न्यायालय की अवमानना के उपयोग का विरोध

किया जाता रहा है। ब्रिटेन जैसे देशों में छोटे मामलों पर बहुत कम न्यायाधीश ध्यान देते हैं। किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि हमारे देश में भी वही स्थिति है और अवमानना के कानून को समाप्त करने की मांग का क्या जबाब दिया गया था? एक प्रसिद्ध आकलन के अनुसार अन्य देशों में यह कानून न भी आवश्यक हो, किन्तु उपनिवेशी देशों में या उन देशों में जहां अश्वेत लोग रहते हैं, इस कानून को नहीं हटाया जा सकता। अब इसी कानून को विधि मंत्री स्थायी बनाना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें भी ऐसा महसूस होने लगा है कि उपनिवेशी देशों या उन देशों में जहां अश्वेत लोग बसते हैं, ऐसे देशों के संबंध में—जहां यह भावना उनके मन में भी बसी हुई है—इस तरह के कानून को बनाए रखना जरूरी है। इसी प्रकार, एक समाचार पत्र का मामला काफी प्रसिद्ध हुआ था, जिसने इस देश की कानून व्यवस्था के संबंध में कुछ उक्तियां की थीं।

श्री नम्बूदिरीपाद का मामला भी है। सर्वप्रथम, मैं कहना चाहूंगा कि इस प्रकार का एक सुझाव कि महाअधिवक्ता ने उस मामले को आगे न बढ़ाने का किसी प्रकार का प्रयास किया था, गलत है। मैं यहां उनका बचाव करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूं, क्योंकि अपना बचाव वे खुद कर सकते हैं। परन्तु मैं आपको सही स्थिति बतलाना चाहता हूं और वह यह थी कि वहां की सरकार ही इस मामले को आगे बढ़ाना नहीं चाहती थी, जैसा कि उन अपराधी मामलों में होता है जिसमें अन्य निजी लोग भी शामिल होते हैं। अतः महाअधिवक्ता के संबंध में ऐसे विचार व्यक्त करना उचित नहीं है।

अगर कानून सिर्फ नागरिक की रक्षा के लिए है तो हम पूरी तरह से माननीय मंत्री के साथ हैं। परन्तु अगर यह कानून किसी न्यायाधीश की किसी नागरिक के विरुद्ध रक्षा के लिए है तो हमें सरकार से उसका विचार और उसकी मंशा के बारे में पूछने का अधिकार है। न्यायाधीशों को विभिन्न कानूनों के तहत सुरक्षा प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए, देश की दंड-विधि है। न्यायाधीशों की स्थिति अन्य लोगों की तुलना में विशिष्ट नहीं होनी चाहिए। न्यायाधीशों की सुरक्षा के लिए और अन्य प्रावधान हैं। अतः क्यों इन प्रावधानों को हम यहां जोड़ें, नम्बूदिरीपाद के मामले के समान जिसका यहां पहले उल्लेख किया गया है, और कई अन्य मामले हो सकते हैं। यह एक उदाहरण है जो इस तरह की भावनाओं को उजागर करेगा। वास्तव में, बार में मेरे एक सहयोगी, जोकि अब उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश हैं, ने कहा था कि कोई अवमानना नहीं हुई थी। एक दूसरे सहयोगी ने कहा; अवमानना हुई है, परन्तु थोड़े से अर्थ-दंड से काम चल जाएगा एक अन्य न्यायाधीश ने कहा; मैं उन्हें कारागार में भेजना चाहता हूं—किसी के द्वारा अपने विचार व्यक्त किए जाने के कारण ऐसी बातें कही गई और एक बार अगर यह अधिकार मिल जाय तो ऐसी चीजें होती ही रहेंगी। इन्सानों से यह आशा नहीं की जा सकती कि—आखिर न्यायाधीश भी इंसान होते हैं—वे इस अधिकार का उपयोग अपने पूर्वाग्रहों

को छोड़कर करेंगे। इस सत्य से बचा नहीं जा सकता है कि हमारी जो न्यायपालिका है, वह कई कारणों से जनमत के प्रवाह से काफी हद तक अलग है। जब बड़े सामाजिक परिवर्तन होते हैं और कड़े शब्दों का प्रयोग हो जाता है, उस वक्त न्यायालय अगर प्राविधिकता के अनुसार चलने लगे और कहें— 'यह अवमानना है' तो फिर कोई वाक-स्वातंत्रय नहीं रह जाता है।

यहां एक अन्य प्रावधान भी है जिसमें यह कहा गया है कि निष्पक्ष मत के रूप में कही गई कोई बात अवमानना नहीं मानी जाएगी। यहीं पर मंत्री महोदय इस मामले को छोड़ देते हैं। निष्पक्ष मत का निर्णय कौन देगा? न्यायाधीश देगा। निष्पक्ष मत को हरदम ही नजर अन्दाज कर दिया जाता है, अगर वह मानहानि का मामला हो तो भी। मेरा कहना यह है कि न्यायाधीशों को इस तरह से एक आडम्बरयुक्त वातावरण में नहीं रहना चाहिए।। उन्हें स्थिति का सामना करना चाहिए। वे राजद्रोह, मिथ्यापवाद लिखित मानहानि या अन्य पर कार्यवाही करने के लिए न्यायालयों की शरण ले सकते हैं। इससे संबंधित सारे प्रावधान संहिता में दिए हुए हैं। अगर लोगों में एक दूसरे के विरुद्ध घृणा फैलाने का सवाल है, तो उसकी व्यवस्था भी हमारी दंड-विधि में की गई है। हमारी दंड-विधि जिसकी रूपरेखा मैकाले ने तैयार की थी, इतनी सशक्त है कि अन्य कोई कानून बनाने की आवश्यकता ही नहीं है। अवमानना संबंधी कानून जो संविधान में दिए मौलिक अधिकारों पर अतिक्रमण करते हैं और कहते हैं कि इसमें अवमानना संबंधी कानून नहीं आता है, एक विशेष छूट के साथ आप उन्हें न्यायाधीशों को सौंप रहे हैं जो यह कहेंगेः "कि यह मामला संसद के सम्मुख है और संसद अभी तक यह सोचती है कि हमें वह अधिकार होने चाहिएं।" मेरे अनुसार, ऐसे मामलों को छोड़कर जहां कार्यवाही के लिए लंबित किसी अपराधिक मामले पर टिप्पणी की गई हो या जहां पर ऐसा प्रावधान हो कि अभी भी अपील की जा सकती है, कैद करने के अधिकार का प्रयोग करना अनुचित है।

यह सबको समझना चाहिये कि ये कार्यवाहियां बहुत खर्चीली और लंबी होती हैं। अवमानना के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही अत्यधिक लंबी होती है। इस विशेष मामले में, जिसका यहां उल्लेख किया गया है—अन्यथा मैं इसकी ओर संकेत नहीं करता—उस पर दिया गया सबसे लंबा निर्णय मार्क्सवाद के सिद्धांत पर पूरा शोध-प्रबंध था जो बाद में स्वयं टिप्पणी का कारण बन सकता था। न्यायाधीश महोदय का मुख्य तर्क यह था कि वे जर्मन भाषा जानते थे और अधिवक्ता महोदय जर्मन नहीं जानते थे।

अतः यह बातें होती रहती हैं। मैं नहीं समझता हूं कि अवमानना संबंधी कानून को इतना विस्तृत बनाया जाना चाहिए जिससे लाला हर किशन लाल के मुकदमें जैसी स्थिति

उत्पन्न हो जाए जिसमें मुकदमें की कार्यवाही वर्षों तक चलती रही। वे बिल्कुल निर्धन तथा दिवालिया हो गए और उनका सब कुछ नष्ट हो गया, क्योंकि मुख्य न्यायाधीश उनको नापसंद करते थे—इसमें केवल इतना ही होना था।

जैसा कि मैंने कहा कि दूसरा मामला यह था कि उन उपनिवेशीय देशों में, जहां अश्वेत लोग रहते हैं, वहां इस प्रकार का कानून आवश्यक था। यदि हम इसे स्वीकार करें, तो हम इस प्रकार का कानून बना सकते हैं। परन्तु मैंने सोचा था कि हम उस स्थिति से निकल चुके हैं।

जिस प्रकार से यहां संसद की कार्यवाही चलती है, यदि मैं उसका उल्लेख करूं, तो शायद मुझे गैर-परम्परानिष्ठ समझा जा सकता है। मालूम नहीं ऐसा क्यों किया गया है। यह और कुछ नहीं, बल्कि न्यायपालिका द्वारा शोषण करने का एक अस्त्र है। आखिरकार, न्यायपालिका अपनी आलोचना का सामना कर सकती है और उसे ऐसा करना चाहिए। लिखित रूप में हम न्यायाधीशों की आलोचना करते हैं। हम कहते हैं कि यह फैसला गलत है। परन्तु उस बारे में कुछ कर नहीं सकते हैं। प्रतिदिन हम ऊपरी अदालतों में जाकर कहते हैं कि निचली अदालत द्वारा दिया गया फैसला गलत और दुर्भावनापूर्ण है, यह है, वह है। ऐसा वहां और यहां भी कहा जा सकता है। परन्तु एक समाचार पत्र वाला उसको छाप नहीं सकता है। मैं यहां कह सकता हूं कि एक न्यायाधीश ने दुर्भावना से प्रेरित होकर यह निर्णय दिया है। परन्तु अगर समाचार पत्र वाले ने इसी बात को छाप दिया, तो वह संकट में पड़ जाता है। मैं इस बात को यहां कह सकता हूं, परन्तु बाहर नहीं कह सकता।

अवमानना संबंधी यह कानून ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी घर से छुटकारा पाने के लिए उसको आग लगा देना है।

वर्तमान कानूनों से पहले ही पर्याप्त प्रावधान हैं। हमें ऐसा कानून नहीं बनाना चाहिए जोकि बहु-प्रयोजनीय हो। उसको न्यायिक प्रक्रियाओं तक ही सीमित रखना चाहिए, जहां सबूतों को छेड़ा गया हो या किसी ऐसे व्यक्ति का चरित्र-हनन किया गया हो, जिस पर मुकदमा चल रहा हो। जैसा कि प्रायः होता है, उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, जब समाचार पत्र मामलों पर मुकदमा चलाते हैं, पूरे मुकदमें को ही निष्प्रभावी कर दिया जाता है और अवमानना संबंधी कानून के अंतर्गत ले लिया जाता है। मैं विधि मंत्री की इस बात से सहमत हूं कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होने से रोकना चाहिए। परन्तु मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि यह कानून फिर वापस आ रहा है। मैंने सोचा था कि समय के साथ लोग उसे भूल गए होंगे। परन्तु, यह फिर वापस आ गया है। हमें इस अवमानना संबंधी कानून के विरुद्ध कड़ा संघर्ष करना

पड़ेगा। ये न्यायपालिका को हथियार बंद कर रहे हैं—और न्यायपालिका में दंडाधिकारी भी शामिल हैं या कोई भी मजिस्ट्रेट—और उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान कर रहे हैं जिसके द्वारा वे लोगों को कैद में डाल सकते हैं। वैसे निगमों की स्थिति दूसरी रहेगी। अतः मैं यह समझता हूं कि यह कदम हमारे मौलिक अधिकारों, विचारों स्वातंत्रय और वाक्स्वातंत्रय के अधिकारों को नियंत्रित करता है। और यह समाज की प्रकृति, सरकार के विचारों से संबंधित शैक्षिक टिप्पणियों को भी रोकता है; यह अवचेतन मन से जुड़े हुए विषय हैं; अगर आप कहते हैं कि आपके अवचेतन मन में आपके अपने विचार हैं और वह आपके मस्तिष्क में है या किसी अन्य के मस्तिष्क में, तो, उसको न्यायाधीशों के अधिनियम के अवमानना की परिधि में नहीं लाया जा सकता है। किसी संस्था में परिवर्तन लाने के लिए दिए किसी आम वक्तव्य को कभी अवमानना का मामला नहीं बनाना चाहिए। यही हम चाहते हैं। जहां विशेष रूप से कोई अवमानना न हुई हो या किसी विशेष न्यायाधीश, न्यायालय या किसी विशेष कार्यवाही के कारण अवमानना न हुई हो, वहां इसकी क्या आवश्यकता है? ऐसा एक प्रावधान होना चाहिए कि इस आवमानना का रूप बहुत गंभीर हो। परन्तु ऐसा कोई प्रावधान नहीं है अगर मैंने उसको समझा है। यह तो न्यायाधीश को ही निर्णय लेना है कि वास्तविकता क्या है और अवास्तविकता क्या है। हो सकता है कोई दूसरा न्यायाधीश इसको देखे परन्तु ये सभी न्यायाधीश एक ही बिरादरी के बन्धु होते हैं, क्योंकि इसमें अन्य तथ्य भी आ जाते हैं। अगर इस मामले को इस प्रकार से नहीं देखा गया, तो हो सकता है कि यह उसके ऊपर ही आ पड़े और न्यायपालिका की ही अवमानना हो जाये। जैसा कि मैंने कहा, अगर वास्तव में न्यायालय की अवमानना हुई है, जब किसी ने न्यायाधीश का अपमान कर दिया है, तो उस व्यक्ति को सजा दी जा सकती है; उसको तुरंत सजा दी जा सकती है, परन्तु ये मामले महीनों चलते रहते हैं, केवल इसलिए कि उसने समाज की स्थिति के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हों या ऐसा व्यक्ति हो जिसे सामाजिक मनोविज्ञान का थोड़ा सा ज्ञान हो। अतः न्यायाधीश किसी के नियंत्रण में नहीं रहते। किसी विशेष संप्रदाय के न्यायाधीश का विचार अलग हो सकता है; किसी विशेष क्षेत्र के न्यायाधीश का विचार अलग हो सकता है या कुछ और हो सकता है।

मुझे याद है कि इंगलैण्ड में जब एक छोटे न्यायाधीश की अदालत में जब एक भारतीय नाविक गवाही देने गया तो न्यायधीश ने कहा "हां, मैं जानता हूं कि ये क्या कहेंगे।" ऐसा रोज ही होता है। न्यायधीश ने कहा "मैं उसको जानता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि वह क्या कहेगा। उसकी मिसाल यहां दी जा सकती है। ऐसे

व्यक्तियों को जो अभियोजकों के साथ-साथ न्यायाधीश भी हैं। निरंकुश अधिकार देना प्राकृतिक नियम तथा न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। विशेष रूप से वहां जहां न्यायाधीश को इस बात का न्याय करना हो कि उस पर हमला किया गया है अथवा नहीं।

अतः ये उपाय उन मामलों तक सीमित रखें जाने चाहिए जो न्यायाधीन हों तथा जिसमें नागरिक प्रभावित हों। प्रावधान के अनुसार स्पष्ट टिप्पणी अवमानना नहीं है। इसका कोई अभिप्राय नहीं है क्योंकि स्पष्ट टिप्पणी का निर्णय तो न्यायाधीश द्वारा ही किया जाता है, कि यह स्पष्ट है या नहीं।

मैं यह कहूंगा कि अभियोग संबंधी कानून में दंड का प्रावधान है तथा समाज में न्यायपालिका के प्रति आदर की भावना है जो भाग्यवश हमारे देश में भी है और यह सब एक अच्छे न्यायाधीश की सुरक्षा के लिएं पर्याप्त है और समाचार पत्रों में जो कुछ कहा जाता है उसके बारे में हमें बहुत संवेदनशील नहीं होना चाहिए।

12

आपातकाल की घोषणा

सदन में एक मत होकर जो विचार व्यक्त किए गए हैं वे न केवल पाकिस्तान के लिए अपितु समूचे विश्व के लिए और विशेषतः विश्व के उस भाग के लिए जिनके द्वारा दिए गए हथियार सदा हमारे विरूद्ध प्रयोग होते रहे हैं, एक चेतावनी है। ये विचार भले ही भावनात्मक प्रतीत हों, किन्तु ये राष्ट्र के दृढ़ निश्चय का प्रतीक हैं। यदि प्रधानमंत्री को कभी इस का प्रमाण चाहिए तो वह उन्हें इस सदन में उन लोगों से मिल चुका है जिन्होंने एक पेशेवर की तरह नहीं अपितु अपने कर्तव्य पालन हेतु इस सदन में उनकी आलोचना की है।

इस संदर्भ में एक या दो मामलों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय पर मेरे द्वारा व्यक्त किए गए विचार कोई अंतिम शब्द नहीं है। इस समय कश्मीर में कोई युद्ध विराम रेखा नहीं है। आक्रमण के कारण युद्ध विराम समझौता खत्म हो गया है। मैं समझता हूं कि संयुक्त राष्ट्र संघ परिवेक्षक आयोग के सदस्यों को वापस भेजने का आदेश देने का निर्णय सरकार को करना है, हम लोगों को नहीं। क्योंकि युद्ध विराम रेखा का उचित रूप से निरीक्षण नहीं कर सकेंगे बल्कि उन शक्तियों का साथ देंगे जो हमारे विरुद्ध हैं। इससे भी अधिक, ये पर्यवेक्षक बीच में हैं और ये मारे भी जा सकते हैं। अतः हम पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हमें उन्हें वहां से चले जाने का आदेश दे देना चाहिए क्योंकि इसमें बहुत बड़ी अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारी है। इनमें से एक भी अंतर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षक के मर जाने से संयुक्त राष्ट्र भावनात्मक रूप से असंतुलित हो जाएगा और वह बाकी सारी बातों पर ध्यान नहीं दे सकेगा।

दूसरी बात यह है कि मैंने प्रधान मंत्री को यह कहते सुना—मेरी सुनने की शक्ति अभी तक बहुत अच्छी है कि पाकिस्तान ने हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वह अपने द्वारा दिए गए वक्तव्य की यथार्थता का पुनः सत्यापन करें, क्योंकि यदि पाकिस्तान ने हमारे खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी है तो वह एक अलग बात है। किंतु यदि पाकिस्तान ने सिर्फ यह कहा है कि युद्ध की स्थिति है तो यह

अलग बात है। पाकिस्तान सरकार ने युद्ध की स्थिति की घोषणा अपने देश वासियों के लिए की है किंतु अभी तक युद्ध की घोषणा नहीं हुई है। परंतु जहां तक हमारा संबंध है युद्ध हो रहा है। अब उचित समय है कि हमें पाकिस्तान के उच्चायुक्त को वापस चले जाने के आदेश दे देने चाहिए ताकि जो रही सही गलत फहमी है वह भी दूर हो जाए और बंगला-देश को मान्यता देने में जो भी अड़चनें हैं वे दूर हो जाएं। तात्पर्य यह है कि जहां तक हमारा संबंध है हम पाकिस्तान को मान्यता नहीं देते हैं क्योंकि यदि इन्होंने हमारे खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी है तो कोई अन्य रास्ता नहीं रह जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी बाधा नहीं है। किंतु यह मामला स्पष्ट होना चाहिए क्योंकि प्रधानमंत्री के स्तर पर यदि सदन में यह कहा जाए कि पाकिस्तान ने हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है तो अंतर्राष्ट्रीय मत बदल जाएगा। और यह कहा जाएगा कि हम बात बढ़ा-चढ़ा कर कह रहे हैं। वास्तव में अब इस बात में कोई अतिश्योक्ति नहीं है, किंतु इस मामले में हमें अब गलती नहीं करनी है। यदि यह घोषित युद्ध नहीं है तो अघोषित है जिसे युद्ध की तैयारी कहा जा सकता है और यह सबसे बुरी स्थिति है। किस पर वार करना है और कहां वार करना है। यह निर्णय सरकार द्वारा किया जाना चाहिए न कि फौजी जनरलों द्वारा। युद्ध का निर्णय लेना एक गंभीर मामला है और इसे फौजी अफसरों के हाथों नहीं सौंपा जा सकता। अतः मुझे कोई शंका नहीं है कि रक्षा मंत्री, जो कि वैसे तो काफी व्यस्त हैं, इस बात को सुनिश्चित करेंगे कि कहां पर और किस पर वार करना है। इसका निर्णय सरकार ही करेगी। और कोई नहीं।

मुझे यह भी आशा है कि आज, कल या जब कभी भी हो सके बंगलादेश को मान्यता दे देनी चाहिए क्योंकि यह पाकिस्तान के लिए उपयुक्त जवाब होगा और हमारे द्वारा उस पर सबसे बड़ी घातक चोट होगी।

मैं यह कह कर समाप्त करना चाहता हूं कि यह एक खेद का विषय है। लड़ाई अत्यंत भयावह होती है, विशेष रूप से हमारे जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश के लिए जहां रहने के लिए भी पूर्ण व्यवस्था न हो। एक ऐसे देश के लिए जिसने बंडीवाश की लड़ाई के बाद अपनी जमीन पर कभी लड़ाई न देखी हो। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे लोगों तथा हमारे सैनिक दलों ने दूसरे देश की भूमि पर तो गौरव के साथ लड़ाइयां लड़ी हैं किंतु अपने मातृभूमि पर हमने लड़ाई नहीं लड़ी है । युद्ध भयंकर होता है, ब्लैक आउट और हर समय बमबारी का डर आदि। इसके परिणाम भयंकर होते हैं।

अतः हमें अपने बीच प्रभावशाली भाषण देने की प्रतियोगिता नहीं करनी है क्योंकि

उससे किसी को क्षति नहीं पहुंचती है। मैं प्रधानमंत्री को इस बात का विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं किसी दल से संबंधित नहीं हूं। इसके अलावा, यहां कोई मतभेद नहीं है, हम एक राष्ट्र हैं।

** ** **

इस देश ने कभी युद्ध करने की कोशिश नहीं की। किंतु जब हमारी सीमाओं पर, युद्ध विराम रेखा पर दूसरे देश अनुचित कार्यवाही करें अथवा दूसरे देश सीमा उल्लंघन अथवा इसी प्रकार की अन्य हरकतें करें तो एक नई स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः जहां हम किसी भी कीमत पर शांति चाहते हैं वहीं जैसाकि अमेरिका के एक भूतपूर्व राष्ट्रपति ने कहा था, "मैं किसी भी मूल्य पर शांति चाहता हूं किंतु वर्तमान मूल्य युद्ध है" की बात पर विश्वास रखते हैं। परन्तु वर्तमान स्थिति में हमारे पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। दुश्मन ने विकल्प चुना है हमारे जवानों को पंगु बनाने के लिए हमारे हवाई अड्डों पर बमबारी किए जाने के पश्चात् युद्ध आरंभ हो चुका है। जैसाकि श्री इन्द्रजीत गुप्त ने उचित ही कहा कि पाकिस्तान के लोगों के साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं है। हम उनसे लड़ना नहीं चाहते। हम यह सुनिश्चित तौर पर बता देना चाहते हैं कि हम लड़ना नहीं चाहते हैं और नाजियों की तरह युद्धरत रहने में विश्वास नहीं रखते हैं जिसमें शांतिप्रिय जनता का विनाश हो जाता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि यदि हमें युद्ध के लिए बाध्य किया जाता है तो हम उसके लिए भी तैयार हैं। केवल चरम परिस्थितियों में ही सैनिक ठिकानों पर बमबारी की जाती है। हम यह भी बताना चाहते हैं कि हमारी गोलीबारी अचूक होती है। युद्ध छिड़ जाने पर लोगों को कठिनाई होगी ही। हम नापाम बम और इस तरह के दूसरे घातक हथियारों का प्रयोग नहीं करेंगे जिनसे युवावर्ग अपंग हो जाये। यदि आपने कभी ऐसे हथियारों से पीड़ित लोगों को देखा होगा तो आप कभी भी ऐसे हथियारों के प्रयोग की अनुमति नहीं देंगे। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हमें इस अवसर पर शत्रु को कुचलने की उमंग में भूलना नहीं चाहिए। मैं जानता हूं कि शत्रु को कभी भी नहीं कुचला जा सकता। यदि वह कुचल भी दिया जाता है तो वह फिर से सिर उठा लेगा। परन्तु हमें उस विषदंत को ही उखाड़ फेंकना होगा जो हमें मारना चाहता है।

अंत में मुझे आशा है कि प्रधान मंत्री जी किसी ऐसी अविवेकी सलाह पर ध्यान नहीं देंगे जिसमें सदन के भंग करने की मांग रखी गई हो। यह मांग इस धारणा पर आधारित है कि संसद एक विलासपूर्ण वस्तु है जिसे हम सहन करते आ रहे हैं। परंतु बात ऐसी नहीं है। संसद एक आवश्यक प्रतिष्ठान है। यदि हमें पराजय का सामना करना पड़े और इसमें कोई संदेह नहीं कि पराजय हो भी सकती है क्योंकि काल्पनिक युद्धों के अतिरिक्त ऐसा कोई युद्ध नहीं है जिसमें पराजय नहीं होती हो, तो संसद ऐसे अवसरों पर सुरक्षा

कवच का कार्य करेगी। अतः संसद को तो अपना अधिवेशन करना ही होगा। जब लंदन शहर पर बमों की वर्षा हो रही थी, ब्रिटेन की संसद में मध्यरात्रि का अधिवेशन चल रहा था और जब वे बैठक कर रहे थे तो वास्तव में सदन पर दो बम गिरे थे। इस घटना ने हिटलर को हिला कर रख दिया था कि बमों की वर्षा तक से भी लोग डरकर नहीं भागे। हमारे लोग भी वैसे ही साहसी हैं। हमारे मन में इस देश की रक्षा करने का आवेग है। जब हमने इतने विशाल साम्राज्य को जड़ से हिला दिया था हम ऐसे दूसरे विशाल साम्राज्यों को भी हिला सकते हैं जो हमारे देश पर आक्रमण करने वाले देश का समर्थन करते हैं। हमें संसार को सावधान कर देना चाहिए कि हमारे देश पर आक्रमण के समय शत्रु को दी जाने वाली सहायता भी हमारे ऊपर आक्रमण करने जैसी ही समझी जाएगी।

13

आंतरिक सुरक्षा विधेयक*

सभापति महोदय, इस चर्चा में हस्तक्षेप करके सदन का समय लेने के लिए मैं क्षमायाचना नहीं करूंगा क्योंकि मेरा विनम्र निवेदन है ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जो स्पष्ट बोल सकता है, को हमारे संविधान के सिद्धान्तों को पूरी तरह अर्थहीन कर देने के विरुद्ध अपने विचार प्रकट करने चाहिए। विशेषकर मौजूदा विधेयक पर जो इस ढंग से लाया गया है जो न तो संसदीय है और न शिष्टता की कसौटी पर खरा उतरता है।

इतना ही नहीं, मैं याद दिलाना चाहता हूं कि आधी शताब्दी पूर्व हमारे कर्णधारों ने, जिन पर सत्ताधारी दल तथा सरकार की हैसियत की काफी बड़ी जिम्मेदारी थी, इस प्रकार के कदम को काले कानून का नाम दिया था। यह बात हमें भूलनी नहीं चाहिए। वह भारत का आपराधिक कानून था, लेकिन उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती थी और लोग इसके विरुद्ध न्यायालय में जा सकते थे। लेकिन आज क्या स्थिति है?

मैं यह कहना चाहता हूं कि यह ऐसा विधान है जिसे इस ढंग से नहीं लाया जाना चाहिए था। इस पर खण्ड-वार चर्चा की जानी चाहिए थी और इसे जनता की राय के लिए परिचालित किया जाना चाहिए था। हमारे वर्तमान विधि मंत्री को न्यायिक अनुभव है। लेकिन इस सदन में वह इतने लम्बे समय से नहीं है कि यह जान सकें कि राजनीतिज्ञ किस ढंग से कार्य करते हैं। जहां तक इस विधान का उद्देश्य है, हमारे सामने ऐसी स्थिति है कि न केवल न्यायिक तंत्र बल्कि विधिसम्मत शासन की पूरी संकल्पना ही समाप्त हो जाएगी। सरकार चाहती क्या है? जो कुछ भी करते हैं उस पर आपत्ति नहीं की जानी चाहिए और उसे न्यायालय में चुनौती नहीं दी जानी चाहिए? वे समझते हैं कि उन्होंने बन्दी प्रत्यक्षीकरण को निलम्बित कर दिया है। लेकिन वकील इसका और अर्थ लगा सकते हैं। गोखले जी यह बात भलीभांति जानते हैं।

विधेयक का प्रारूप इस ढंग से तैयार किया गया है कि उच्चतम न्यायालय के पास

*लोक सभा वाद-विवाद, 17 जून, 1971

बन्दी-प्रत्यक्षीकरण की कोई याचिका नहीं है और यह फैसला करना न्यायाधीशों के हाथ में है तथा इससे पहले कि न्यायाधीश कोई निर्णय करें, इस संबंध में हो-हल्ला मच जाएगा।

यह इस प्रकार का कानून है जो विधिसम्मत शासन का प्रतिवाद है—जो कुछ भी हम पास करते हैं वह कानून बन जाता है और इसलिए यह भी कानून ही है—यह प्राकृतिक कानून के सिद्धांत के विरुद्ध है जिसके अंतर्गत जेल में रखे जाने वाले व्यक्ति को यह बता दिया जाता है कि उसे क्यों जेल में रखा जा रहा है तथा वह संविधान में वर्णित कानूनी व अन्य सहायता ले सकता है। संविधान के अनुच्छेद-22 में यह प्रावधान है कि वह कानूनी सहायता ले सकता है और इसमें यह भी कहा गया है केवल ऐसी स्थिति को छोड़कर जब निवारक नजरबन्दी कानून लागू हो। इसमें एक प्रश्न उत्पन्न होता है जिसमें न्यायालय ने कहा है कि क्या यह मामला निवारक नजरबंदी के अंतर्गत आता भी है या नहीं क्योंकि विधेयक के शीर्षक में तो ऐसा कुछ नहीं है जिसमें यह कहा गया हो कि यह निवारक नजरबंदी उपाय है। निस्संदेह महाधिवक्ता इससे कुछ भिन्न अर्थ लगाते हैं। सरकार को न्यायालय के समक्ष किसी नजरबंद व्यक्ति को कानूनी सहायता लेने से मना करने से पहले यह साबित करना होगा कि अपराधी को निवारक नजरबंदी कानून के अंतर्गत पकड़ा गया है।

इतिहास साक्षी है कि अंग्रेजों के निरंकुश शासन के दौरान भी किसी व्यक्ति को अपने बचाव के लिए सरकारी खर्च पर वकील मिल सकता था और आज क्या स्थिति है? आज हमें बताया गया कि उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों का एक सलाहकार बोर्ड होगा जो कि गोपनीय रूप से कार्य करेगा।

खैर, उच्च न्यायालय के यह तीन न्यायाधीश सलाहकार समिति में रहेंगे। यहां मैं निवेदन करना चाहूंगा कि कोई भी व्यक्ति जो "स्टार चैम्बर" प्रणाली के अंतर्गत न्यायिक हैसियत से कार्य करने के लिए सहमत होता है वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने के योग्य नहीं है। न्याय का सार यह है और उसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि न केवल न्याय किया जाना चाहिए अपितु न्याय किया गया है ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए। न्याय किया गया प्रतीत होना चाहिए और इस पृष्ठभूमि में मेरे विचार में जब गुप्त रूप से न्यायिक जांच होती है तो आप जानते ही हैं कि क्या होता है। यह मेरा अनुभव है। जब किसी व्यक्ति को बंदी बनाया जाता है, नजरबन्दी कानून अथवा किसी और कानून के तहत और उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाती है और यह कैसा विधान है जिसमें बहुमत का सहारा लेकर उसे जेल में ठूंस दिया जाए? यदि एक भी व्यक्ति उस फैसले के विरुद्ध है तो इसका अर्थ है इसमें कुछ संदेह है। हमारे

संविधान का क्या आधार है? कम से कम बंदी बनाने वाले अधिकारियों को शंकारहित तरीके से साबित करना चाहिए अपने लिए, हमारे लिए नहीं।

इसके बाद हम इसके दूसरे पहलू को लें। इस सब का आधार संतुष्टि है। लेकिन किसकी संतुष्टि? जिला आयुक्त की संतुष्टि, जिसे सदैव मुख्यमंत्री अथवा केन्द्रीय मंत्रियों के आदेश लेने की आवश्यकता नहीं है बल्कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट अथवा अतिरिक्त मजिस्ट्रेट की राय मानता है। इस प्रकार से संतुष्टि विषयपूरक संतुष्टि है। संतुष्टि का तत्व है कि एक सभ्य समाज में उसे परखा जा सके और यदि उसे परखा नहीं जा सकता तो वह कानून नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि तब केवल वह किसी की निजी अनुभूति बन जाती है। मैं केवल यही कह सकता हूं कि कार्यपालिका को इस मामले में संदेह हो सकता है। उनका विचार है कि संदेह के कारण हैं और कोई भी कुछ समझ सकता है। जब आप कहते हैं कि कार्यपालिका के मन में संदेह है तो मेरे विचार में विधि-शास्त्र के सुस्थापित मानदंडों के अनुसार सभी सभ्य समाजों में सोचने पर कोई दंड नहीं है। इसलिए मैं श्री पंत पर कोई आरोप नहीं लगाना चाहता हूं। ऐसे गम्भीर मामले पर उनके भाषण में जो व्यंग्य और उपहास झलकता है उससे मुझे बहुत दुख हुआ। जिस दिन यह विधेयक पारित हो जाएगा वह दिन संसद के लिए मनहूस होगा। आप संविधान का संशोधन नहीं कर रहे हैं अपितु संविधान पर छल से कालिख पोत रहे हैं। आप प्रिवी पर्स के बारे में संशोधन क्यों चाहते हैं। सब कुछ बंद कर दो। वह देश के दुश्मन हैं। आप किसी को भी देश का दुश्मन कह सकते हैं। कोई आपसे नहीं पूछेगा कि आपने यह किस आधार पर किया।

माननीय अध्यक्ष महोदय, मैं खंडवार नहीं बोल रहा। एक जगह कहा गया है कि यदि कार्यपालिका को पता चलेगा कि किसी को गलती से इस कानून के तहत पकड़ा गया है तो उसे छोड़ दिया जाएगा। अब यदि जिसे छोड़ा गया है, वह न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है तो आप उसे यह नहीं बताएंगे कि उसे क्यों पकड़ा गया था। यह किस तरह का कानून है? कहने का तात्पर्य है कि यदि किसी व्यक्ति को गलती से अथवा दुर्भावना से पकड़ा जाता है और बाद में कार्यपालिका को पता चलता है कि वह निर्दोष था तो उसे छोड़ दिया जाता है। लेकिन इसका हल क्या है? कुछ नहीं। न तो मुआवजे का कोई प्रावधान है और न ही खोई हुई प्रतिष्ठा और सम्मान की क्षति पूर्ति। इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं किया गया है। राजनैतिक आन्दोलन में जेल जाना दूसरी बात है। अफ्रीका के कई देशों में बड़ी संख्या में लोग राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण जेल गए। उन्हें पी० जी० (प्रिजन ग्रेजुएट) कहा जाता है। आज हम प्रिजन पोस्ट ग्रेजुएट पैदा कर रहे हैं।

इसलिए इसका तीसरा पहलू यह है कि हम अपनी विधायी और प्रशासनिक प्रणाली में

दो नए सिद्धांत शामिल करने जा रहे हैं। पहला यह नहीं कि हमारे समाज के तीन विभाग—कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधानांग होंगे, परन्तु कार्यपालिका विधायी, प्रशासनिक, दंडात्मक तथा अन्य सभी प्रकार की शक्तियां अपने पास ही रखती है। ये अधिकारी अर्थात् न तो गृह मंत्री और उनके अतिरिक्त मजिस्ट्रेट और न ही उनके चपरासी का न्यायपालिका से कोई संबंध है। वे कार्यपालिका के अंग हैं और हम इस देश में 70-80 वर्ष से न्यायपालिका और कार्यपालिका को एक दूसरे से अलग करने के लिए जोरदार शब्दों में मांग करते रहे हैं और इस मामले में आप कार्यपालिका को ऐसी प्रत्येक शक्ति प्रदान कर रहे हैं जो अर्द्ध-न्यायिक काम करने के लिए चाहिए और जिस पर किसी प्रकार की निगरानी नहीं है। यह एक ऐसी स्वैच्छिक शक्ति है जो अनियंत्रित और दिशाहीन है और यह शक्ति जो एक ऐसे दल में निहित है जिसकी या तो कोई नीति है या है ही नहीं, जिसका पीछे बैठने वाले बहुत सारे लोग केवल समर्थन करते हैं, एक प्रकार की ऐसी नृशंसता है जिसका हमें समर्थन नहीं करना चाहिए। यह फासिस्टवादी शासन की शुरुआत है।

यह खेद की बात है कि संसद में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका। आप संविधान के मूलभूत सिद्धांत को ही खंडित कर रहे हैं और उल्टे ढंग से संविधान पुनः लिख रहे हैं। मैं नहीं कह सकता हूं कि मैं पूरी तरह इस विधेयक का विरोध करता हूं। मैं इस विधेयक के एक उप-खंड, अर्थात खण्ड 18(1) का समर्थन करता हूं जिसमें यह कहा गया है:—

"आन्तरिक सुरक्षा अध्यादेश, 1971 एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।"

मैं इसका समर्थन करूंगा, अन्य बातों का नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. लोक सभा वाद-विवाद, 9 फरवरी, 1960
2. लोक सभा वाद-विवाद, 1 अगस्त, 1972
3. लोक सभा वाद-विवाद, 10 अगस्त, 1971
4. राज्य सभा वाद-विवाद, 9 सितम्बर, 1957
5. लोक सभा वाद-विवाद, 23 नवम्बर, 1960
6. लोक सभा वाद-विवाद, 22 अप्रैल, 1960
7. राज्य सभा वाद-विवाद,. 24 मई,. 1957
8. लोक सभा वाद-विवाद, 12 फरवरी, 1960
9. लोक सभा वाद-विवाद, 1 अप्रैल, 1971
10. लोक सभा वाद-विवाद, 1 दिसम्बर, 1971
11. लोक सभा वाद-विवाद, 20 दिसम्बर, 1971
12. लोक सभा वाद-विवाद, 4 दिसम्बर, 1971
13. लोक सभा वाद-विवाद, 17 जून, 1971

सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज–वी·के·कृष्ण मेनन

का

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़िए
(iii)	19	प्रवत्ता	प्रवक्ता
43	5	दु:संधि	दुरभिसंधि
50	15	आवश्यकता युद्ध का उदैव	आवश्यकता इस बात की है कि युद्ध का सदैव
69	14 (नीचे से)	वर्ग कि·मी·	वर्ग मील
71	12 (नीचे से)	2·5 लाख	लगभग 2·5 लाख
78	5	कंधों	कंधों
82	15	1,14,140, 93,738	1,14,140 तथा 93,738
89	2 (नीचे से)	इस	यह